अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-03, 16-30 सितंबर, 2017

गौरी लंकेश की हत्या

*

विनम्र नमन्

लोकतंत्र की हत्या

*

श्रद्धांजलि

सरकार की प्राथमिकता में नहीं हैं किसान
भारतीय किसान संगठित क्यों नहीं होते?

"मेरा बस चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा प्रधानमंत्री किसान होगा; क्योंकि भारत का राजा किसान है। 'हे किसान, तू बादशाह है।' आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। जो आदमी अपनी जमीन से अन्न पैदा करता है और खाता है, वह यदि जनरल बने, मंत्री बने, तो हिन्दुस्तान की शकल बदल जायेगी। आज जो सड़ांध फैली हुई है वह मिट जायेगी।" –गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 03, 16-30 सितंबर, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. किसान आंदोलन और ग्राम-शक्ति का... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. एक बनो, नेक बनो... 5
4. सरकार की प्राथमिकता में नहीं हैं... 7
5. कृषि संकट की जड़ें... 8
6. भूदानी किसानों पर आयी नई... 10
7. फसल बीमा योजना घोटाला... 12
8. भारतीय किसान संगठित क्यों नहीं... 13
9. 'बा' उपन्यास... 16
10. गौरी लंकेश की शहादत को नमन्... 18
11. बोलती तस्वीरें : गौरी लंकेश की हत्या... 19
12. कविता : शुभ लाभ देखकर मैं चुप... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

किसान आंदोलन और ग्राम-शक्ति का निर्माण

आज जब हम किसान आंदोलन के बारे में चर्चा करते हैं, तब अधिकांशतः ग्राम समुदाय की स्थिति के बारे में कोई चर्चा नहीं करते हैं। किसान आंदोलन जब ग्राम आंदोलन से अलग होता है तो अपनी जड़ों से कट जाता है। किसान की शक्ति मजबूत हो और ग्राम की शक्ति कमजोर हो, यह संभव नहीं है। ऐतिहासिक तथ्य भी सही है कि पहले ग्राम-समुदाय एवं ग्राम स्वावलंबन को कमजोर किया गया, फिर गांव के उद्योग-धंधों को नष्ट किया गया और उसके बाद यह सरल हो गया कि किसानों को भी कमजोर कर दिया जाये।

आज ग्राम समुदाय या ग्राम समाज के शक्तिहीन हो जाने के कारकों की चर्चा करें, तो मुख्यतः निम्न बिन्दु उभरकर आते हैं।

एक, गांव का एक बड़ा वर्ग जिनमें सीमांत किसानों का भी बड़ा हिस्सा शामिल है, उसका न्यूनतम उपभोग पर जो खर्च है या होना चाहिए, वह उनके आय से अधिक है। फलस्वरूप वे या तो निरंतर कर्ज में रहते हैं या अभाव एवं दारिद्र्य का जीवन बिताने को विवश रहते हैं। इसका मुख्य कारण काम के अवसरों में गिरावट एवं श्रम के शोषण के कारण आय में कमी है।

यह स्थिति इसलिए उभरकर आयी है क्योंकि गांव के अंदर विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के बीच के अंतःसंबंध समाप्त हो चुके हैं। गांव के उद्योग-धंधे नष्ट हो चुके हैं।

अब इतने बड़े समुदाय का कृषि क्षेत्र के साथ जुड़ाव घट जाने के कारण, इन्हें किसान आंदोलन के साथ जोड़ने के लिए नयी रणनीति को बनाना होगा। कृषि उपज का मूल्य, कर्ज-माफी या भूमि से विस्थापन पर अच्छा मुआवजा महत्त्वपूर्ण मुद्दे होते हुए भी, संपूर्ण ग्रामीण शक्ति को प्रकट करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। किसान आंदोलन को गांव के इस बड़े हिस्से को जोड़ने के लिए, इन वर्गों के मसलों को भी किसान आंदोलन के व्यापक दायरे में शामिल करना होगा।

दूसरी बात यह है कि पूंजीवादी बाजार और पूंजीवादी संस्थाओं की पैठ कहीं अधिक बढ़ गयी है। गांव का बड़ा-सम्पन्न वर्ग इन पूंजीवादी शक्तियों के साथ गठजोड़ बना चुका है। उसके हित गांव की शक्ति बनाने में नहीं बल्कि गांव का शोषण करने वाली शक्तियों के साथ जुड़ा है। उसके नेतृत्व में होने वाला किसान आंदोलन गांव के एक बड़े किन्तु विपन्न वर्ग को अलग-थलक कर देता है। और, अंततः गांव की शक्ति के निर्माण में बाधा बन जाता है। एक कमजोर गांव, उसके हित साधन में अनुकूल साबित होता है।

तीसरी बात यह कि ग्राम स्वावलंबन को नष्ट करने के बाद कृषि स्वावलंबन को भी नष्ट किया जा रहा है। बीज, खाद, पानी, ऊर्जा, कीटाणुनाशक आदि सभी क्षेत्रों में कृषि बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर होती जा रही है। स्थानीय बीज प्रजातियां खत्म होती जा रही हैं। किसान आंदोलन परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में तभी उभर सकेगा, जब वह कृषि स्वावलंबन, जल तथा जंगल, बाग आदि के प्रबंधन को भी स्वदेशी भावना के साथ जोड़कर खड़ा करेगा।

गांव की अंतरिक एकता को नष्ट करने की कुछ तो पुरानी सामाजिक व्यवस्थाएं दोषी थीं और कुछ आधुनिक राजनीतिक-आर्थिक शक्तियां भी इसमें लिप्त हैं। किसान आंदोलन को सभी विभाजनकारी शक्तियों को शिकस्त देने की रणनीति भी बनानी होगी। संघर्ष और रचना के कार्यक्रम, इस दिशा को मजबूत करने वाले होने चाहिए।

ग्राम-शक्ति के निर्माण के लिए शोषण व श्रेणीमुक्त ग्राम समाज के निर्माण की ओर बढ़ना होगा। किसान आंदोलन को अपने विमर्श में इन मुद्दों को शामिल करना होगा। बिमल कुमार

अहिंसा की ताकत

❑ **महात्मा गांधी**

इस संसार में हिंसा सब जगह व्याप्त है। एक अंग्रेजी वाक्य का अर्थ है—कुदरत के नाखून खून से रंगे होते हैं! यदि हम ऊपर-ऊपर से इसी वाक्य पर विचार करेंगे तो उसका सत्य हमें जगह-जगह पर दिखायी देगा। परंतु यदि हम मनुष्य को दूसरे प्राणियों से ऊंचा मानें और उसमें एक विशेष इंद्रिय का आरोपण करें तो हमें फौरन ही यह मालूम होगा कि इस लाल खून से रंगे नाखूनों वाली कुदरत के बीच, मनुष्य ऐसे नखों से हीन बड़ी शोभा पा रहा है। मनुष्य का यदि कोई अलौकिक कर्तव्य है, उसको शोभा दे, ऐसा कोई कर्तव्य है तो वह अहिंसा ही है। वह हिंसा के मध्य में खड़ा रहकर, अपनी अंतर-गुहा की गहराई में जाकर, उससे अनुभव प्राप्त करके कहता है : ''हम हिंसामय संसार में मनुष्य का धर्म अहिंसा है और वह जितने अंशों में अहिंसक है उतने ही अंशों में अपनी जाति का गौरव बढ़ा सकता है।'' मनुष्य का स्वभाव हिंसा नहीं बल्कि अहिंसा है, क्योंकि वही अपने अनुभव से निश्चयपूर्वक यह कह सकता है, ''मैं देह नहीं हूं, आत्मा हूं, और इस देह का उपयोग आत्मा के विकास के निमित्त—आत्म-दर्शन के निमित्त—करने का मुझे अधिकार है।'' और उसमें से वह देह-दमन की, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि शत्रुओं को जीत लेने की नीति की रचना करता है, उन्हें जीतने का भारी प्रयत्न करता है और उसमें वह पूर्ण सफलता प्राप्त करता है। जब वह ऐसी सफलता प्राप्त करता है तभी यह कहा जा सकता है कि उसने मानव-जाति के अनुरूप कार्य किया है। इसलिए राग-द्वेषादि को जीत लेना कोई अतिमानुषी कार्य नहीं, बल्कि मानुषी कार्य है। अहिंसा का पालन बड़े उच्च प्रकार की वीरता का लक्षण है। अहिंसा में भीरुता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

आपमें से बहुत कम लोगों ने अहिंसा का प्रयोग किया होगा। इस संबंध में हमें इतिहास से भी कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता, क्योंकि इतिहास में हमें इसके प्रयोग का कोई नमूना नहीं मिलता। लेकिन अगर आप मेरे-जैसी सूक्ष्म बुद्धि रखेंगे, तो आपको इस सृष्टि में सर्वत्र अहिंसा का दर्शन होगा। यह जगत् प्रति पल बदलता है। इसमें संहार की इतनी शक्तियां हैं कि कोई स्थिर नहीं रह सकता। लेकिन फिर भी मनुष्य-जाति का संहार नहीं हुआ, इसका यही अर्थ है कि सब जगह अहिंसा ओतप्रोत है। मैं उसका दर्शन करता हूं। गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के समान अहिंसा संसार की सारी चीजों को अपनी तरफ खींचती है। प्रेम में यह शक्ति भरी हुई है। मैं तो अपने को अहिंसा का साइंटिस्ट मानता हूं न! इसलिए मैं उसके नियमों को जानता हूं और देखता हूं। हमारे दिल में सबके प्रति समभाव न हो तो हम अहिंसा के पुजारी नहीं हैं। अगर आपके पास ऐसा समभाव है तो यदि कोई ''आपका ध्वंस हो'' की आवाज लगाने आये तो आप प्रतिकार या हिंसा का आश्रय न लें। जिस व्यवहार के कारण दूसरों के दिल में हिंसा के भाव पैदा होते हैं, ऐसा व्यवहार छोड़ दें। इतने आदमी मुझे देखने के लिए चले आते हैं। ये समझते हैं कि मैं ईश्वर का अवतार हूं। ईश्वर का अवतार कोई नहीं है, और हैं तो सभी हैं! मैं हूं तो वे भी हैं। फिर वे इस तरह मेरी तरफ क्यों खिंच रहे हैं? यह तो अहिंसा का नियम काम कर रहा है। मुझमें अनासक्ति भी तो है? इसलिए मैं तटस्थ होकर देख सकता हूं कि यह मेरी शक्ति नहीं है, अहिंसा की शक्ति है। मुझमें क्या है? हजार दोषों का पुतला हूं! आत्म-निरीक्षण करता हूं तो दोष-ही-दोष नजर आते हैं। अगर आप मेरे-जैसा आत्म-निरीक्षण करें, तो आप भी पागल हो जायेंगे। हमें अपने हर एक विचार पर अंकुश रखने की कोशिश करनी चाहिए। मैं ऐसी कोशिश करता हूं। आप देखते हैं कि हिंसा के आधार पर बना हुआ समाज भी विशारदों द्वारा ही चलता है। हम एक नये समाज का निर्माण सत्य और अहिंसा के आधार पर करना चाहते हैं। हम एक नये समाज का निर्माण सत्य और अहिंसा के आधार पर करना चाहते हैं। उसका शास्त्र बाने के लिए हमें विशारदों की जरूरत है। जिस तरह से आज जगत चल रहा है, वह हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है। जगत का बाह्य रूप उसकी भीतरी हालत का प्रतीक है। जर्मनी जैसा मुल्क जो हिंसा को ही ईश्वर मानता है, रात-दिन उसी के विकास में लगा है, उसी को सुशोभित करने की कोशिश में लगा हुआ है। हिंसा के पुजारी जो-जो उद्योग कर रहे हैं, हम देख रहे हैं। हमें भी यह समझ लेना चाहिए कि हिंसा वाले हमारी प्रवृत्तियां देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि हम अपने शास्त्र के विकास के लिए क्या कर रहे हैं।

पृथ्वी के ठेठ उत्तरी ध्रुव के आगे के प्रदेश का हमें अनुभव नहीं है, इसलिए उसका कल्पना-चित्र ही हम खींच सकते हैं, लेकिन उससे प्रत्यक्ष देखने-जैसी तृप्ति हो ही नहीं सकती। यही बात अहिंसा-संबंधी प्रश्नों के बारे में है। अतः जिनका अहिंसा में अटल विश्वास है, उनके लिए फिलहाल तो मैं काल्पनिक चित्र ही खींच सकता हूं।

जब तक हममें सच्ची अहिंसा का प्रादुर्भाव नहीं होगा तब तक हम अहिंसा के मार्ग से स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जब अहिंसकों का बहुमत हो जायेगा तभी हम सत्ता प्राप्त कर सकेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि तब जनता का बहुत बड़ा भाग अहिंसा का अनुयायी हो गया होगा। जब ऐसी स्थिति होगी तब हिंसा की वृत्ति बड़ी हद तक समाप्त हो गयी होगी और हिंसक उपद्रव भी काबू में आ गये होंगे।

इसके बावजूद मैंने स्वीकार किया है कि अहिंसक शासन में सीमित रूप में पुलिस की शक्ति के लिए स्थान होगा। यह मान्यता मेरी

अपूर्ण अहिंसा की द्योतक है, क्योंकि मैं यह कह सकता हूं कि हम फौज के बिना अपना काम चला सकेंगे, तथापि मुझमें यह कहने की हिम्मत नहीं है कि हम पुलिस के बिना भी चला लेंगे। हां, मैं ऐसी स्थिति की कल्पना अवश्य करता हूं जब पुलिस की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन इसका सच्चा पता तो अनुभव से ही लगेगा।

लेकिन वह पुलिस, आज की पुलिस से बिलकुल अलग प्रकार की होगी। उसमें अहिंसा को मानने वालों की भरती होगी। वे जनता के सेवक होंगे, सरदार नहीं। लोग उनकी मदद करते होंगे और रोज-रोज कम होते जाते उपद्रवों का वे पुलिस के साथ मिलकर, आसानी से सामना कर सकेंगे। पुलिस के पास कुछ शस्त्र होंगे, लेकिन उनका प्रयोग शायद ही होगा। सच पूछें तो उस पुलिस को सुधारकों का दल मानना चाहिए। ऐसी पुलिस का उपयोग मुख्य रूप से चोरों-डाकुओं पर काबू पाने-भर के लिए होगा। अहिंसक शासन में मजदूरों और मालिकों के झगड़े क्वचित् ही होंगे, हड़तालें शायद ही होंगी, क्योंकि अहिंसक बहुमत की प्रतिष्ठा सहज ही इतनी होगी कि समाज के आवश्यक अंग उसके शासन का सम्मान करने वाले होंगे। इसी प्रकार इस व्यवस्था में साम्प्रदायिक झगड़े भी नहीं होने चाहिए।

हिंसा का मार्ग पुराना और रूढ़ है। उसमें खोज करना उतना कठिन नहीं है। अहिंसा का रास्ता नया है। अहिंसा का शास्त्र अभी बन रहा है। हम उसके सारे अंग नहीं जानते। इसमें खोज और प्रयोग का विशाल क्षेत्र पड़ा है। आप अपनी सारी बुद्धि लगा सकते हैं।

अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उसका सेवक हूं। जो चीज करोड़ों की नहीं हो सकती, वह मेरे त्याज्य है, और मेरे साथियों के लिए भी त्याज्य ही होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वह समुदाय, जाति और राष्ट्रों की नीति हो सकती है। अभी हमने यह सिद्ध नहीं कर दिया है, लेकिन यही हमारे जीवन का उद्देश्य हो सकता है। जिनको यह विश्वास न हो, या जिनसे यह न बन सके, वे कृपा करके हट जायें। लेकिन मेरा तो यही स्वप्न है। इसी को मैंने अपना कर्तव्य माना है। चाहे सारा जगत मुझे छोड़ दे, तो भी मैं जीऊंगा और उसी प्रयत्न में मरूंगा। मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिए है। वह आत्मा का गुण है। इसलिए वह व्यापक है, क्योंकि आत्मा तो सभी के होती है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है। आज कहा जाता है कि व्यापार में सत्य नहीं चलता, राज-प्रकरण में नहीं चलता। तो फिर वह कहां चलता है? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता, तो वह कौड़ी कीमत की चीज नहीं है। जीवन में उसका उपयोग ही क्या रहा? सत्य और अहिंसा कोई आकाशपुष्प नहीं हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म से प्रकट होने चाहिए।

हम मुसलमान मानते हैं कि हमारे पैगम्बर का जीवन पूर्ण रूप से खुदा द्वारा निर्देशित और सच्चे माने में अहिंसक था, हालांकि इस शब्द का जो अर्थ आप लगाते हैं उस अर्थ में नहीं। उन्होंने कभी कोई आक्रामक युद्ध नहीं किया, और दूसरों की भावनाओं का उन्हें बहुत ख्याल रहता था। लेकिन जब उन्हें आत्मरक्षा के लिए युद्ध करने पर विवश होना पड़ा तो उन्होंने धर्म-युद्ध करने के लिए अपनी तलवार उठायी, और कुछ परिस्थितियों में, जिन्हें उन्होंने स्वयं निर्धारित कर दिया है, वे तलवार के उपयोग की छूट भी देते हैं। लेकिन आपकी अहिंसा अलग किस्म की है। आप हर स्थिति में उसका विधान करते हैं, मैं नहीं समझता, पाक-पैगम्बर इसकी इजाजत देते। इस स्थिति में हम किसका अनुसरण करें— आपका या पाक पैगम्बर का? अगर हम आपका अनुसरण करते हैं तो मुसलमान नहीं रह जाते। यदि हम पैगम्बर का अनुसरण करते हैं तो अपने धर्मके रूप में चरम अहिंसा का वरण करने वाली कांग्रेस में शामिल नहीं हो सकते। क्या आप इस दुविधा का हल सुझायेंगे।

मैं यही उत्तर दे सकता हूं कि जब आपको ऐसा अंतर दिखायी देता है तो आपको बेझिझक पाक पैगम्बर का अनुसरण करना चाहिए, मेरा नहीं। हां, इतना जरूर कहना चाहूंगा कि विविध धर्मों के एक तटस्थ अध्येता के रूप में मैंने पैगम्बर के जीवन और कुरान शरीफ का अध्ययन किया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कुरान की शिक्षा तत्त्वतः अहिंसा के पक्ष में है। कुरान में कहा गया है कि अहिंसा हिंसा से श्रेष्ठ है। अहिंसा का आदेश कर्तव्य के रूप में दिया गया है, हिंसा की छूट जरूरत पड़ने पर। पाक पैगम्बर ने जो-कुछ किया, उस पर मैं फतवा नहीं दूंगा। मुझे अपने आचरण का आधार विश्व के महान शिक्षकों ने जो-कुछ किया उसे नहीं, बल्कि जो कुछ कहा उसको बनाना है। पैगम्बर को पैगम्बरी तलवार उठाने से नहीं, बल्कि वर्षों तक सत्य को जानने के लिए खुदा की इबादत करने से मिली। उनके जीवन में से इन मूल्यवान वर्षों को अलग करते ही आप देखेंगे कि पैगम्बर पैगम्बर नहीं रह गये हैं। मुहम्मद के जीवन के उन्हीं वर्षों ने उन्हें पैगम्बर बनाया। किसी पैगम्बर का उसकी पैगम्बरी की स्वीकृति के बाद का जीवन हमारा मार्गदर्शक नहीं बन सकता। पैगम्बरों के कार्यों का मूल्यांकन तो पैगम्बर ही कर सकते हैं। यदि कोई नागरिक किसी सिपाही के गुण-दोष नहीं आंक सकता, विज्ञान से अपरिचित सामान्य व्यक्ति किसी सिपाही के गुण-दोष नहीं परख सकता तो कोई साधारण मनुष्य किसी पैगम्बर के बारे में कैसे निर्णय दे सकता है? और उसका अनुसरण तो साधारण मनुष्य के लिए और भी अशक्य है। यदि मैं मोटरगाड़ी चलाने बैठूं तो निश्चित है कि मैं उसे और खुद को भी खतरे में—बल्कि शायद मौत के मुंह में भी—डालूंगा। फिर सोचिए कि किसी पैगम्बर का अनुसरण करना मेरे लिए कितना ज्यादा खतरनाक होगा! एक बार पैगम्बर साहब से पूछा गया कि जब आप निर्धारित अवधि से अधिक समय तक उपवास कर सकते हैं तो आपके साथी क्यों नहीं कर सकते? उन्होंने छूटते ही जवाब दिया—''खुदा मुझे रूहानी खुराक देता है, जो मेरी जिस्मानी जरूरतें भी पूरी कर देती है। तुम्हारे लिए उन्होंने रमजान तय कर दिया है। मेरी नकल करना तुम्हारे लिए मुनासिब नहीं।'' यह उद्धरण मैंने याददाश्त से दिया है। ❑

एक बनो, नेक बनो

❑ विनोबा

अंग्रेजों की मालिकी गयी, तो भगवान खुश हुआ। राजा-महाराजाओं की मालिकी गयी, तो भगवान खुश हुआ। अब छोटे-छोटे मालिक भी अपनी मालिकी छोड़ दें और परमेश्वर की भक्ति में लग जायें। यह कोई जबरदस्ती से करने की बात नहीं, परस्पर प्रेम से और एक-दूसरे को समझा-बुझाकर करने की बात है।

आज कुछ लोग जमीन के मालिक बन बैठे हैं, बाकी सब मूलिया मजदूर हैं। लेकिन ये जो मूलिया हैं, वे ही मूल हैं, वे ही बुनियाद हैं। वे काम करते हैं। अगर वे काम नहीं करेंगे, तो फसल कैसे पैदा होगी। इसलिए हम जिन्हें 'मूलिया' कहते हैं, उनका भी जमीन पर उतना ही हक है, जितना मालिक कहलाने वाले लोगों का है।

भगवान ने हमें काम करने के लिए दो लम्बे-लम्बे हाथ दिये हैं, फिर हमें मुश्किल क्या है? भगवान ने हमें एक छोटा-सा मुंह दिया है। अगर रावण के जैसे दस मुंह दिये होते, तो हमारी क्या हालत होती? पर भगवान ने हमें दस मुंहवाला राक्षस नहीं बनाया। लेकिन ये शहर के लोग राक्षस होते हैं। वे अपने पास दस लोगों का अनाज रख लेते हैं। उनको धन का इतना लोभ होता है कि वे उसका ढेर जमा करके रखते हैं, लेकिन एक दिन सब छोड़कर चले जाते हैं। अगर हम इसी तरह चलेंगे, तो कभी सुखी नहीं होंगे।

जब हम अपने हाथों से काम और दूसरों की सेवा करेंगे, तभी सुखी होंगे। लेकिन आज तो हम अपने हाथों का उपयोग छीनने में करते हैं। हमारे पड़ोसी के दो हाथ हैं और हमारे दो हाथ। अगर उसके दो हाथ और हमारे दो हाथ मिलकर काम करेंगे, तो सबको खाना मिलेगा। लेकिन आज हमारे दो हाथ उसके दो हाथों को काटते हैं और उसके दो हाथ हमारे दो हाथों को। इसलिए सब दुखी हैं। इसी से हम आपको समझाते हैं कि आप एक बन जाइए।

हम चाहते हैं कि गांव-गांव में इस विचार की आग फैल जाय और जितनी अपवित्रता है, वह जल जाय। मालिकी मिट जाय, तो भेदासुर का नाश हो जाय। रावण के दस सिर थे। इन दिनों गांवों में दसों मालिक होते हैं, इसलिए गांव रावण बनता है। हम चाहते हैं कि हर गांव दस सिर वाला राक्षस न बने, एक सिर वाला मनुष्य बने।

ताकत बढ़ाने की युक्ति : हम एक छोटी-सी बात बताते हैं। हिन्दुस्तान में पांच लाख छोटे-छोटे गांव हैं। उस हिसाब से औसत गांव नौ सौ लोगों का होता है। समझने की बात है कि इन छोटे-छोटे गांवों के लोग अगर अलग-अलग रहते हैं, इन्हें बाहर से कोई भी मदद नहीं मिलती है, तो ऐसे गांवों की ताकत कैसे बढ़ सकती है? ये बहुत कमजोर रहेंगे। इसलिए हमने उनकी ताकत बढ़ाने की एक युक्ति बतायी है। गांव का एक परिवार बनाइये। उसको गांव मत कहिए, कुटुम्ब कहिये।

अगर आप कहें कि हमारे परिवार में ढाई सौ आदमी या तीन सौ आदमी हैं, तो आपकी ताकत बढ़ जायेगी और आप बलवान बन जायेंगे। हम चाहते हैं कि बहनें यह भाषा न बोलें कि मेरे तीन या चार लड़के हैं; बल्कि यह भाषा बोलें कि गांव के जितने लड़के हैं, वे सब हमारे हैं। एक छोटे-से गांव में भी अगर आप अलग-अलग परिवार बनाकर रहते हैं, अड़ोसी-पड़ोसी एक-दूसरे की परवाह नहीं करते हैं, तो सुखी नहीं हो सकेंगे। लेकिन ये गांव परिवार बनेंगे, तो उनके जैसे सुखी कोई ही होंगे।

शहर वालों के लिए एक परिवार बनाने का काम जरा मुश्किल है। आज बड़े-बड़े शहरों की जनसंख्या दस लाख, बीस लाख या साठ लाख होती है। गांव वाले सोचते हैं कि उनके सामने हम तो बिल्कुल ही कमजोर हैं। इसलिए अगर गांव वाले अपना एक परिवार बनायेंगे, तो बलवान् बनेंगे।

गांव एक परिवार : एक परिवार बनाने का अर्थ यह नहीं कि सबकी रसोई एक साथ बनेगी। सहूलियत की दृष्टि से तो आज के जैसी अलग-अलग रसोई करना ही ठीक होगा। लेकिन गांव की सारी जमीन गांव की बनेगी। जमीन हमारा आधार है। हमें जमीन से खाना मिलता है, हमारी गायें जमीन पर चरती हैं। हमारे मकान जमीन पर बनते हैं और मिट्टी के ही बनते हैं। हम मरते हैं, तो मिट्टी में ही मिल जाते हैं। यह धरती हमारी माता है और हम उसकी संतान हैं। धरती माता का कोई मालिक नहीं हो सकता। लेकिन आज तो कुछ लोग मालिक बन बैठे हैं और बहुत से भूमिहीन हैं।

आपने दीमक का बनाया हुआ घर देखा होगा। छोटी-छोटी चीटियां भी जब मिलकर-जुलकर काम करती हैं, तो कितना सुंदर घर बनाती हैं। हमने तो उस घर को 'भुवनेश्वर' नाम दिया है। जंगलों में जहां शेर रहते हैं, वहां भी वे निर्भयता से टिकती हैं। उनसे सबक लेना चाहिए। अगर वे दीमक अलग-अलग रहेंगी, तो क्या दुनिया में टिकेंगी? लेकिन वे एक साथ रहती हैं, और कहती हैं कि यह 'भुवनेश्वर' हमारा सबका है,

वे 'मेरा'-'मेरा' नहीं कहतीं। इसी तरह हम भी 'मेरा'-'मेरा' छोड़ देंगे, तो सुखी होंगे।

गांव की कुल जमीन हमारी है, कुल दौलत हमारी है। हम सब लोग भाई-भाई हैं। सहूलियत के लिए हर घर में थोड़ी-थोड़ी जमीन बांटी जायेगी, लेकिन मालिक तो गांव रहेगा। किसी के खेत में मदद की जरूरत होगी तो वह हक के साथ सबको बुलायेगा। किसी के खेत में फसल कम आयेगी, तो लोग उसे अपनी फसल का हिस्सा देंगे। जमीन तो सबके लिए है, क्योंकि वह भगवान ने पैदा की है। हम एक मुट्ठी भी पैदा नहीं कर सकते। पांडव पांच ही थे। उन्हें जंगलों में घूमना पड़ा था, फिर भी वे निर्भय रहे; क्योंकि वे मिल-जुलकर रहते थे। भगवान ने भी उन्हीं के पक्ष में अपना जोर लगाया। इस तरह जो लोग मिल-जुलकर रहेंगे, एक-दूसरे के लिए त्याग करेंगे, वे छोटे नहीं रहेंगे, भगवान उनकी मदद करेंगे।

भारत की विशेषता : आज दुनिया में बहुत अशांति है। हिन्दुस्तान में काफी दुख है, लेकिन जितना दुःख है उतनी अशांति नहीं है। दुःख बहुत ज्यादा है, अशांति कम है, क्योंकि यहां के लोगों के मन में शांति भरी हुई है। वर्षों से संतों ने जो तालीम लोगों को दी है, उसके कारण यहां के लोगों का दिमाग विपत्ति में भी शांत रहता है। उस हिसाब से आज दुनिया में बहुत ज्यादा अशांति है। दुनिया के लोग एक-दूसरे से डरते हैं और खूब शस्त्र बढ़ाते हैं। लाखों लोगों को खतम करने वाले बम बनाते हैं।

हिन्दुस्तान की हड्डियों में, खून में शांति है। इसलिए यहां के लोग विपत्ति में शांत रहते हैं। परंतु हम इन विपत्तियों और दारिद्रय को मिटा दें, तो यहां पर खूब शांति रहेगी और एकता बढ़ेगी। इसलिए जो हमसे भी ज्यादरा दुःखी और दरिद्र हैं, उनकी तरफ हमें ध्यान देना चाहिए। गांव-गांव के लोग मिलकर काम करेंगे, तो गांव में कोई दुःखी न रहेगा। अगर हम चाहते हैं कि सारी दुनिया में शांति हो, तो हमें गांव-गांव में जमीन की मालिकी मिटानी चाहिए, जमीन गांव की बनानी चाहिए और कारखाने देश के। मालिक कोई न रहे। यही सुख की प्राप्ति का साधन है। यह जो 'मैं' 'मेरा' 'तू' 'तेरा' चलता है, उसी भेद के कारण दिल टूटे हुए हैं। पड़ोसी-पड़ोसी के बीच, देश-देश के बीच, जाति-जाति के बीच भेद पड़े हुए हैं। हमें ये सारे भेद मिटाने हैं।

मनुष्य के हृदय में और चिन्तन में ताकत होती है। दुनिया मे एक तो विचार का बल है, दूसरा प्रेम का बल है, तीसरा धर्म का बल है। चौथा बल है ही नहीं। कानून का बल तो पीछे-पीछे आता है। इसलिए लोग प्रेम को, धर्म को और सत्य को समझें, तो सारा समाज बदल जायेगा। लाखों-करोड़ों लोग अपना जीवन चलाते हैं। कानून का तो उन्हें पता भी नहीं होता। हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग अपना जीवन चलाते हैं। कानून का तो उन्हें पता भी नहीं होता। हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग स्नान किये बगैर भोजन नहीं करते, तो क्या इसके लिए कोई कानून बना है? लेकिन यहां पर वर्षों से प्रचार हुआ है कि स्नान किये बगैर खाना नहीं चाहिए—सत्पुरुषों ने गांव-गांव जाकर प्रचार किया है। इस देश को सत्पुरुषों ने बनाया है।

सत्पुरुषों का देश : यह महापुरुषों का देश है। यहां के लोग कभी सम्पत्ति को उच्च स्थान नहीं देते। कोई विलास करता हो या इंग्लैण्ड, अमेरिका से पढ़कर आया हो, तो उसे यहां के लोग बड़ा नहीं मानते। किसी के पास राक्षस की ताकत है या शस्त्रास्त्र है, तो उसे बड़ा नहीं मानते। जिनके मन में प्रेम है, जीवन में त्याग है, जो भगवान के भक्त हैं, उन्हीं को यहां के लोग 'बड़ा' मानते हैं।

सिकन्दर बादशाह ने हिन्दुस्तान के राजा को हराया और खुद मालिक बना। एक दिन वह रास्ते से जा रहा था, तो उसने देखा कि एक साधु बैठा है। उस साधु ने सिकन्दर को देखकर न सलाम किया, न उठकर खड़ा हुआ। सिकन्दर ने उससे पूछा। ''तू कौन है?'' उत्तर में कहा : ''मैं दुनिया का मालिक हूं।'' सिकन्दर घबड़ा गया। उसने सोचा कि मैं तो दुनिया को जीतने के लिए इतनी कोशिश करता हूं, मेरे पास इतनी बड़ी सेना है और इसके पास तो कुछ भी नहीं है। फिर भी यह दुनिया का मालिक कैसे हो सकता है?

सिकन्दर बादशाह ने हिन्दुस्तान के राजा को हराया और खुद मालिक बना। एक दिन वह रास्ते से जा रहा था, ते उसने देखा कि एक साधु बैठा है। उस साधु ने सिकन्दर को देखकर न सलाम किया, न उठकर खड़ा हुआ। सिकन्दर ने उससे पूछा। ''तू कौन है?'' उत्तर में कहा : ''मैं दुनिया का मालिक हूं।'' सिकन्दर घबड़ा गया। उसने सोचा कि मैं तो दुनिया को जीतने के लिए इतनी कोशिश करता हूं, मेरे पास इतनी बड़ी सेना है और इसके पास तो कुछ भी नहीं है। फिर भी यह दुनिया का मालिक कैसे हो सकता है? उसने साधु से कहा : ''तू नहीं जानता कि मैं सिकन्दर हूं, दुनिया का मालिक हूं।'' साधु ने जवाब दिया : ''मैं तो तुझे जानता ही नहीं। फिर तू कैसे दुनिया का मालिक बना?'' ऐसे फकीर हिन्दुस्तान में पहले थे और आज भी हैं।

हिन्दुस्तान के लोग संसार में रहते हैं, पर उनका सारा चित्त परमेश्वर में रहता है। संसार को वे ज्यादा महत्त्व नहीं देते। यही बात ठीक भी है; क्योंकि इसी से हिन्दुस्तान के लोग दस हजार साल से टिके हुए हैं।

मिल-जुलकर काम करना सीखेंगे, तो आपको बाहर की मदद भी आसानी से मिलेगी। आपकी अंदर की ताकत भी बढ़ेगी और ईश्वर की कृपा भी होगी। आपके गांव में मधुर वाणी ही सुनायी देनी चाहिए। कटु शब्द नहीं सुनायी पड़ने चाहिए। हमेशा सत्य ही बोलना चाहिए। आप दो हाथों से काम करेंगे, एक-दूसरे पर प्यार करेंगे और राम-नाम का जप करेंगे तो सुखी होंगे।

... *क्रमशः अगले अंक में*

सरकार की प्राथमिकता में नहीं हैं किसान

❑ संतोष भारतीय

किसानों का सवाल पिछले 60 सालों में हर गुजरते दिन के साथ महत्त्वपूर्ण होता चला गया है, लेकिन किसी सरकार ने किसानों की समस्याओं को कभी अपनी प्राथमिकता में नहीं रखा। लोग ये मानते थे कि किसान कभी संगठित नहीं हो सकते हैं। किसान कभी अपनी मांगों को लेकर जोर नहीं दे सकते हैं, दबाव नहीं डाल सकते हैं। इसका कारण हर राजनीतिज्ञ और नौकरशाह को पता था कि किसान कभी संगठित नहीं हो सकते। उनकी इसी अनदेखी ने देश के किसानों को संगठित करना शुरू कर दिया। एक दौर था जब किसानों के कई नेता हुआ करते थे, जिनमें महेन्द्र सिंह टिकैत प्रमुख थे। टिकैत साह ने मेरठ कचहरी को महीनों घेर कर किसानों को संगठित किया और पहली बार किसानों की शक्ति का एहसास कराया। दक्षिण में नंजू स्वामी थे। टिकैत के देहावसान के बाद पूरा किसान आंदोलन कम से कम उत्तर भारत में असंगठित हो गया। सरकारों का रवैया नहीं बदला, राजनीतिक दलों का रवैया नहीं बदला, नौकरशाहों का रवैया नहीं बदला और अब किसान निराशा के दौर में पहुंच गये हैं। उसने बड़े पैमाने पर आत्महत्याएं करनी शुरू कर दीं। आत्महत्याओं की जड़ में गांव का सूदखोर नहीं था, बल्कि बैंकों का सूद था, बैंकों का दबाव था, खेती का अलाभकारी होना था और खेती का मूल्य न मिलना था। किसान के पास खेती के अलावा आय का कोई दूसरा साधन नहीं होता है। सारे देश में एक सरल तरीका निकला कि समस्या से बचने के लिए आत्महत्या कर लो। ये आत्महत्याएं इतनी बढ़ गयीं कि धीरे-धीरे किसानों के भीतर भी अपने साथी की मौत की संवेदना समाप्त होने लगी। ये दौर कई साल चला, लेकिन अब जाकर किसानों ने दोबारा अपने हक के लिए लड़ने का फैसला किया है। किसानों ने धीरे-धीरे ये निर्णय लेना शुरू कर दिया कि वो उतनी ही फसल उगायेंगे, जितनी फसल उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए काफी है। किसान अपनी जमीन को परती छोड़ देने का फैसला लेने लगा और इसकी शुरुआत महाराष्ट्र, खासकर औरंगाबाद और नासिक के किसानों ने की। उन्होंने फसल का दाम नहीं मिलने के विरोध में सड़क पर टमाटर फेंक दिये, हजारों लीटर दूध फेंक दिया, फसलों का भाव नहीं मिलने के विरोध में सड़कें जाम कीं। महाराष्ट्र में किसानों के सवालों को लेकर सड़कों पर बड़े-बड़े जुलूस निकले, लेकिन न राज्य सरकार चेती और न ही केन्द्र सरकार।

किसानों का ये दर्द मध्य प्रदेश पहुंच गया। एक तरफ किसान आंदोलन चला रहा था और दूसरी तरफ आत्महत्याएं हो रही थीं। अब किसानों के बीच इस बात की चर्चा चल रही है कि आखिर हम सरकार से मांगें, तो क्या मांगें। किसान संगठित नहीं हैं। कई सारे किसान संगठन हैं। उनकी अपनी स्थानीय मांगें हैं, पर राष्ट्रीय स्तर पर किसान क्या मांग करे। मेरी कई किसान नेताओं से बात हुई। उस बातचीत के बाद मैं ये समझा कि किसान अपनी मांगों के लिए अपने को संगठित करने का फैसला ले चुका है। वे सरकार पर दबाव डालने के तरीके भी तलाश रहे हैं। वे अब अपनी खेती को लाभकारी बनाने के कई तरीके भी सरकार को सुझाना चाहते हैं, जिनमें पहला तरीका है कि सरकार एक बार देश के किसानों का कर्ज माफ करे। जितना कर्ज सरकार बड़े पूंजीपतियों का बैंकों के जरिए माफ कर देती है, जिस पैसे को लेकर वो विदेश भाग जाते हैं, चाहे वो एनपीए के रूप में हो या सीधी कर्ज माफी हो या वन टाइम सेटलमेंट हो, लेकिन किसान का दो-तीन लाख रुपये का कर्जा माफ करने में सरकार को पसीने आ जाते हैं। सरकार तरह-तरह के बहाने बनाती है। जहां घोषणा कर देती है, वहां भी कर्ज माफी अमल में नहीं आती। तीन लाख के लिए एक किसान अपनी जान दे देता है। शायद इसलिए किसान ये मांग करना चाहते हैं कि देश में एक बार किसानों का संपूर्ण कर्जा माफ हो जाये, लेकिन कर्जा माफ होना उनकी समस्याओं का हल नहीं है। इसी के साथ देश के हर ब्लॉक में, उस ब्लॉक में पैदा होने वाली प्रमुख फसल पर आधारित उद्योग धंधा लगे। किसान सरकार से उद्योग लगाने के लिए पैसे नहीं मांग रहे हैं। उनका कहना है कि सरकार ऐसी नीति बनाए कि कोई सरकारी अधिकारी, पुलिस उस ब्लॉक में पैदा होने वाली प्रमुख फसल पर आधारित उद्योग लगाने में अड़ंगा न डाल सके। किसान ये भी मांग करना चाहते हैं कि उस उद्योग को लगाने में प्राथमिकता के आधार पर बैंक से कर्ज मिले और जिसकी ब्याज दर सिर्फ दो प्रतिशत हो। इस ऋण को लौटाने की अवधि दस साल हो। इसका परिणाम ये होगा कि किसान को फसल सिर्फ 10 किलोमीटर की यात्रा कर अपने ब्लॉक तक ले जाना होगा। वहां उपलब्ध औद्योगिक इकाई को फसल बेचनी होगी और वह खुशी-खुशी अपने घर चला जाएगा। फिर किसान या कृषि आधारित उद्योग लगाने वाली उस व्यक्ति को सामान बेचने बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा, क्योंकि तब छोटे या बड़े व्यापारी उस ब्लॉक में आकर सामान सीधे खरीद लेंगे। इसमें केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का एक पैसा नहीं जाता है। इसमें बैंक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर जोर दें। किसान अपना उद्योग स्वयं लगा ले। खेती के साथ-साथ उसकी फसल का पैसा उसे मिले और उसके बच्चों को उन उद्योग धंधों में नौकरी मिल जाये। किसान अपनी इन मांगों के समर्थन में सारे देश में सम्मेलन करने वाले हैं और सरकार से ये कहने वाले हैं कि आप अगर ऐसा

नहीं करेंगे तो आपको देश में एक मजबूत किसान क्रांति का सामना करना पड़ेगा।

किसानों ने अपने वोट से नरेन्द्र मोदी को भारी बहुमत से जिताया है। इस आशा से जिताया है कि उन्हें उनकी फसल का लागत से 50 प्रतिशत अधिक मूल्य मिलेगा। प्रधानमंत्री मोदी ने इसकी घोषणा देश के हर हिस्से में जाकर की थी, शायद इसलिए कि वो किसानों का वोट चाहते थे। किसान अब उन्हें याद दिला रहे हैं कि आप उस वादे पर भी अमल कीजिए। आपने कर्ज माफी का वादा किया था, उस पर भी अमल कीजिए और तत्काल कृषि आधारित उद्योग धंधों को बढ़ाने का एक बड़ा फैसला लीजिए।

सरकार ये क्यों नहीं समझती कि तीन लाख, चार लाख, पांच लाख रुपये की वजह से एक किसान आत्महत्या करता है और दूसरी तरफ वो अरबों करोड़ रुपये विदेशों में बहुत सारे देशों को दान में दे रही है। जहां वो पैसा वहां के विकास में नहीं लगता, बल्कि वहां की भ्रष्ट व्यवस्था उस पैसे को खा जाती है। भारत सरकार जिन अफ्रीकी देशों को पैसा दे रही है, वहां पर भ्रष्टाचार की कोई सीमा नहीं है। वहां भारत से हजार गुना ज्यादा भ्रष्टाचार है और शायद इस पैसे को देने में भारतीय विदेश सेवा या भारतीय बैंकिंग सेवा के अधिकारियों का भी एक बड़ा हिस्सा होता है। सरकार को चाहिए कि वो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी देश को दो साल तक सहायता न दे। विदेशों में अरबों करोड़ रुपये दान के रूप में भ्रष्टाचार की भेंट न चढ़ाये, बल्कि उस पैसे का इस्तेमाल भारत के किसानों के लिए उद्योग धंधे लगाने में करे।

दरअसल किसानों की समस्याओं का हल कर्ज माफी नहीं है, लेकिन कर्ज माफी तात्कालिक रूप से जान बचाने का एक साधन जरूर है। अफसोस की बात है कि सरकार ने इसे लेकर कभी सर्वदलीय बैठक नहीं बुलायी। किसी भी सरकार ने नहीं बुलायी। सरकार ने नीति-निर्माताओं से कभी नहीं कहा कि वो किसान को केन्द्र में रखकर नीति बनाएं। सरकार ने बड़े उद्योगपतियों से कभी नहीं कहा कि वो अपने लाभ में से एक हिस्सा किसानों के कोष के लिए भी बनाएं। सरकार ने कभी किसान आयोग की बात नहीं की, जिसका संवैधानिक दर्जा हो और जो सरकार को किसानों की हालत के बारे में समय-समय पर जानकारी दे सके।

लेकिन, अब वक्त आ गया है कि सरकार किसानों के लिए कुछ करे। किसान बड़ी आशा से इस समय केन्द्र सरकार की तरफ देख रहे हैं कि उनकी समस्याओं के हल के लिए केन्द्र सरकार कुछ लेकर आयेगी, पर केन्द्र सरकार ने तो माखौल बना दिया। उसने प्रचार करना शुरू कर दिया कि उसने मंत्रिमंडल में किसानों को सस्ती दर पर बैंकों से कर्ज दिलवाने का फैसला लिया ाहै। ये सब तो आठ साल से चल रहा है। उसमें कौमा, फुलस्टॉप भी नहीं बदला है। तब *केन्द्र सरकार का कौन मंत्री है, जो इतना बड़ा झूठ सारे देश में फैला रहा है। क्या उसे लगता है कि किसानों को इस बात का पता नहीं चलेगा कि आपने उनके लिए कुछ नहीं किया है? इसलिए अभी वक्त है कि किसानों के लिए कुछ सार्थक कीजिए जिससे किसानों की जिन्दगी में खुशियां लौट सकें, उनकी आत्महत्याएं रुके, उनको उनकी फसल का दाम मिले और साथ ही साथ उनकी फसल को उनकी पहुंच के भीतर उनके ही ब्लॉक में प्रोसेसिंग यूनिट के जरिए पक्के माल में तब्दील किया जा सके। अगर आज ये नहीं होता है, तो कल देश को और खासकर केन्द्र सरकार को और बहुत सारी राज्य सरकारों को किसानों के उग्र आंदोलन का सामना करना पड़ सकता है।* आज ये विनती है, कल मजबूरी हो जायेगी। तब किसान सारे राजनीतिज्ञों को एक ही तराजू पर तौलने लगेगा और उन्हें एक ही नजर से देखने लगेगा कि ये उनके हितों के दुश्मन हैं। ये स्थिति न आये, इसके लिए अगर कुछ काम करना है तो आज करना होगा।

लेखक, 'चौथी दुनिया' के संपादक हैं। ❑

कृषि संकट की जड़ें

❑ **जावेद अनीस**

राजनीतिक दलों के लिए किसान एक ऐसा चुनावी मुद्दे की तरह है, जिसे वे चाहकर भी नजरअंदाज नहीं कर सकते क्योंकि यह देश की करीब आधी आबादी की पीड़ा है जो अब नासूर बन चुका है। विपक्ष में रहते हुए सभी पार्टियां किसानों के पक्ष में बोलती हैं और उनकी आवाज को आगे बढ़ाती हैं लेकिन सत्ता में आते ही वे उसी विकास के रास्ते पर चलने को मजबूर होती हैं जहां खेती और किसानों की कोई हैसियत नहीं है। मौजूदा व्यवस्था में किसान अपने वजूद की लड़ाई लड़ने के लिए अभिशप्त हैं। –सं.

आज भारत के किसान खेती में अपना कोई भविष्य नहीं देखते हैं, उनके लिए खेती-किसानी बोझ बन गया है। हालात यह है कि देश का हर दूसरा किसान कर्जदार है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि यदि कुल कर्ज का औसत निकाला जाये देश के प्रत्येक कृषक परिवार पर औसतन 47 हजार रुपये का कर्ज है। इधर मौजूदा केन्द्र सरकार की तुगलगी हिकमतें भी किसानों के लिए आफत साबित हो रही है,

नोटबंदी ने किसानों की कमर तोड़ के रख दी है। आंकड़े बताते हैं कि नोटबंदी के चलते किसानों को कृषि उपज का दाम 40 फीसदी तक कम मिला। जानकार बताते हैं कि खेती-किसानी पर जीएसटी का विपरीत प्रभाव पड़ेगा, इससे पहले से ही घाटे में चल रहे किसानों की लागत बढ़ जायेगी। मोदी सरकार ने 2022 तक किसानों की आमदनी दुगुनी कर देने जैसे जुमले उछालने के आलावा कुछ खास नहीं किया है। आज भारत के किसान अपने अस्तित्व को बनाये और बचाए रखने के लिए अपने दोनों अंतिम हथियारों का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिसके दांव पर उनकी जिन्दगियां लगी हुई हैं। एक हथियार गोलियां-लाठियां खाकर आंदोलन करने का है तो दूसरा आत्महत्या यानी खुद को खतम कर लेने का।

दरअसल यह केवल किसानों का नहीं बल्कि पूरे कृषि क्षेत्र का संकट है। यह एक 'कृषि प्रधान' देश की 'कृषक प्रधान' देश बन जाने की कहानी है। 1950 के दशक में भारत के जीडीपी में कृषि क्षेत्र का हिस्सा 50 प्रतिशत था, 1991 में जब नई आर्थिक नीतियां लागू की गयी थीं तो उस समय जीडीपी में कृषि क्षेत्र का योगदान 34.9 प्रतिशत के आसपास आ गया है। जबकि देश की करीब आधी आबादी अभी भी खेती पर ही निर्भर है। नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से सेवा क्षेत्र में काफी फैलाव हुआ है जिसकी वजह से आज भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चुनिन्दा अर्थ व्यवस्थाओं में शुमार की जाने लगी है, लेकिन सेवा क्षेत्र का यह बूम उस अनुपात में रोजगार का अवसर मुहैया कराने में नाकाम रहा है।

नतीजे के तौर पर आज भी भारत की करीब दो-तिहाई आबादी की निर्भरता कृषि क्षेत्र पर बनी हुई है। इस दौरान परिवार बढ़ने की वजह से छोटे किसानों की संख्या बढ़ी है जिनके लिए खेती करना बहुत मुश्किल एवं नुकसान भरा काम हो गया है और कर्ज लेने की मजबूरी बहुत काम हो गयी है। एनएसएसओ के 70वें दौर के सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल 9.02 करोड़ काश्तकार परिवारों में से 7.91 करोड़ (यानी 86.6 फीसदी) खेती से इतनी कमाई नहीं कर पाते जिससे वे अपने परिवार के खर्चों को पूरा कर सकें। खेती करने की लागत लगातार बढ़ती जा रही है, जिससे किसानों के लिए खेती करना लगातार मुश्किल होता जा रहा है। दरअसल खेती का सारा मुनाफा खेती संबंधी कारोबार से जुड़ी कंपनियां लूट रही हैं, भारत के कृषि क्षेत्र में पूंजी अभी भी सीधे तौर पर दाखिल नहीं हुआ है, अगर इतनी बड़ी संख्या में आबादी लगभग शून्य मुनाफे (जीरो प्रॉफिट) पर इस सेक्टर में खप कर इतने सस्ते में उत्पाद दे रही है तो फौरी तौर पर इसकी जरूरत ही क्या है, इसी के साथ ही किसानी और खेती से जुड़े कारोबार तेजी से फल-फूल रहे हैं। उर्वरक खाद बीज, कीटनाशक और दूसरे कृषि कारोबार से जुड़ी कंपनियां सरकारी रियायतों का फायदा भी लेती हैं। यूरोप और अमरीका जैसे पुराने पूंजीवादी मुल्कों के अनुभव बताते हैं कि इस रास्ते पर चलते हुए अंत में छोटे और मध्यम किसानों को उजड़ना पड़ा है क्योंकि पूंजी का मूलभूत तर्क ही अपना फैलाव करना है जिसके लिए वो नये क्षेत्रों की तलाश में रहता है। भारत का मौजूदा विकास मॉडल इसी रास्ते पर फर्राटे भर रही है जिसकी वजह देश के प्रधानमंत्री और सुबाओं के मुख्यमंत्री दुनिया भर में घूम-घूम कर पूंजी को निवेश के लिए आमंत्रित कर रहे हैं, इसके लिए लुभावने आफर प्रस्तुत दिये जाते हैं जिसमें सस्ती जमीन और मजदूर शामिल है।

भविष्य में अगर विकास का यही रास्ता रहा तो बड़ी पूंजी का रुख गांवों और कृषि की तरफ मुड़ेगा ही और जिसके बाद बड़ी संख्या में लोग कृषि क्षेत्र छोड़ कर दूसरे सेक्टर में जाने को मजबूर किये जायेंगे, उनमें से ज्यादातर के पास मजदूर बनने का ही विकल्प बचा होगा। यह सेक्टोरियल ट्रांसफॉर्मेशन बहुत ही दर्दनाक और अमानवीय साबित होगा। *मोदी सरकार इस दिशा में आगे बढ़ भी चुकी है, इस साल अप्रैल में नीति आयोग ने जो तीन वर्षीय एक्शन प्लान जारी किया है उसमें 2017-18 से 2019-20 तक के लिए कृषि में सुधार की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गयी है। इस एक्शन प्लान में कृषि क्षेत्र में सुधार के लिए जिन नीतियों की वकालत की गयी है उसमें न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को सीमित करना, अनुबंध वाली खेती (कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग) के साथ जीएम बीजों को बढ़ावा देना और इस क्षेत्र में निजी कंपनियों के सामने मौजूद बाधाओं को खत्म करने जैसे उपाय शामिल हैं। कुल मिलाकर पूरा जोर कृषि क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भूमिका बढ़ाने पर है, यह दस्तावेज एक तरह से भारत में 'कृषि के निजीकरण' का रोडमैप है।*

हमारे राजनीतिक दलों के लिए किसान एक ऐसा चुनावी मुद्दे की तरह है जिसे वे चाहकर इसलिए भी नजरअंदाज नहीं कर सकते क्योंकि यह देश की करीब आधी आबादी की पीड़ा है जो अब नासूर बन चुका है, विपक्ष में रहते हुए तो सभी पार्टियां किसानों के पक्ष में बोलती हैं और उनकी आवाज को आगे बढ़ाती हैं लेकिन सत्ता में आते ही वे उसी विकास के रास्ते पर चलने को मजबूर होती हैं जहां खेती और किसानों की कोई हैसियत नहीं है। सरकारें आती जाती रहेंगी लेकिन मौजूदा व्यवस्था में किसान अपने वजूद की लड़ाई लड़ने के लिए अभिशप्त हैं। सतह पर आंदोलन भले ही शांत हो गया लगता हो लेकिन किसानों का दर्द, गुस्सा और आक्रोश अभी भी कायम है। ❑

भूदानी किसानों पर आयी नई आफत

❑ कुमार कृष्णन

हाल ही में बिहार सरकार के एक फरमान से गांधीजी के उत्तराधिकारी विनोबा भावे के करीब चार लाख भूदानी किसान संकट से घिर गये हैं। बिहार सरकार ने परिपत्र जारी कर भूदान किसानों को बेदखल करने की तलवार लटका दी है। ऐसे में साठ साल के बाद उन्हें भूदान की जमीन से उजाड़कर गांधी, विनोबा और जयप्रकाश की माला जपने वाली सरकार क्या हासिल करना चाहती है? भूदानी किसानों की बेबसी और सरकार की हठधर्मिता पर सवाल उठाता प्रस्तुत आलेख। –सं.

बिहार सरकार के राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग द्वारा जारी परिपत्र से भूदान कार्यकर्ता इस चिन्ता में डूबे हैं कि आखिर सरकार ने इस परिपत्र को साठ साल के बाद क्यों जारी किया। अगर करना था तो जमींदारी उन्मूलन के तत्काल बाद क्यों नहीं किया। भूदान कार्यकर्ता किसानों की जमीन उनके हक में सुनिश्चित करने के लिए किसी ऐसे अकाट्य तर्क की तलाश में जुट गये हैं ताकि अदालत में सरकारी परिपत्र को रद्द करवा सकें और अगर इस प्रयास में वे नाकाम होते हैं तो भूदान किसानों के पास करो या मरो आंदोलन के सिवाय कोई चारा नहीं बचता। भूदान किसान इस परिपत्र को विनोबा जैसे संत की आत्मा पर कुठाराघात बता रहे हैं। वे उदाहरण देते हैं कि अतीत में जिस भी नेता ने भूदान किसानों के विरुद्ध कदम उठाने की कोशिश की वह दुर्दिनों से ऐसे घिरे कि अब वे चाहकर भी चुनाव नहीं लड़ सकते। ऐसा ही हाल इस परिपत्र को जारी करने वाले सरकार से जुड़े नेताओं का भी होगा।

भूदान किसान भूदान प्राप्ति और वितरण की प्रक्रिया को एक यज्ञ की तरह देखते हैं और इसके विरुद्ध कदम उठाने वाले अफसरों के खिलाफ हाय-हाय करते हैं। विनोबा को भूदान किसान अपना उद्धारक मानते हैं और आस्था इतनी गहरी कि विनोबा उनके लिए भगवान से कम नहीं है। इन भूदान किसानों के हित में विनोबा ने अपने जीते जी भूदान यज्ञ अधिनियम को खूब सोच विचारकर इतना सशक्त बनाया कि उसे देश का कोई कानून चुनौती नहीं दे सके। अब अगर इतना सशक्त अधिनियम सरकार के एक परिपत्र के सामने हार जाता है, इससे न सिर्फ भूदान किसान उजड़ेंगे बल्कि गांधी, विनोबा और जयप्रकाश की विरासत और उनके योगदानों पर भी आंच आयेगी। दुनिया भर में प्रसिद्ध मानवीय आधार पर अवतरित एक स्वयंस्फूर्त अहिंसक क्रांति की स्मृतियों, प्रतिमानों और उसके कारण बने संवरे भूदान किसानों के छोटे-छोटे संसार भी तबाह हो जायेंगे। भूदान किसानों को एक उम्मीद उनके लिए जीवनदान देने वाले लोकनायक जयप्रकाश नारायण आंदोलन के योद्धाओं से थी, लेकिन न जाने किस कारण वे भी चुप्पी साधे हुए हैं।

परिपत्र बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम 1954 की धारा 12 के प्रावधानों के अनुकूल नहीं है। अधिनियम की धारा 12 में साफ है कि यदि किसी सत्वधारी या भूधृतिधारी में जिसका स्टेट या भूमि सुधार अधिनियम 1950 के अधीन राज्य में निहित हो चुकी हो, इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले लिखित रूप से घोषणा की हो, ऐसे स्टेट या भूधृति में समाविष्ट किसी भूमि को उसने आचार्य विनोबा भावे को दान कर दिया है और राज्य सरकार से यह लिखित प्रतिज्ञा की हो कि इस अधिनियम के अधीन ऐसी भूमि के संबंध में भुगतानी मुआवजा छोड़ देगा तो राज्य सरकार ऐसी भूमि को भूदान यज्ञ के प्रयोजनार्थ भूदान यज्ञ समिति को हस्तांतरित कर देगी और वह भूमि भूदान यज्ञ समिति में निहित हो जायेगी। इसके बावजूद परिपत्र के मुताबिक जमींदारी उन्मूलन के बाद यदि किसी भूतपूर्व जमींदारों द्वारा गैरमजरूआ खास जमीन बिहार भूदान यज्ञ समिति अथवा विनोबा भावे को दान स्वरूप दी गयी है तो ऐसे दानपत्रों की वैधानिक मान्यता नहीं होगी, क्योंकि जमींदारी उन्मूलन के बाद गैरमजरूआ खास जमीन सरकार में निहित हो चुकी है।

उल्लेखनीय है कि इस परिपत्र के प्रभावी होने से करीब चार लाख भूदान किसानों को भूदान यज्ञ समिति प्रदत्त जमीन से बेदखल होना होगा। भूदान से प्राप्त कुल भूमि 6,48,593.14 एकड़ में से 3,46,494.95 एकड़ भूमि संपुष्ट की गयी है। अभी तक 2,56,392.39 एकड़ भूमि वितरित की जा चुकी है। वितरण के योग्य शेष बची हुई 5,990.03 एकड़ भूमि के वितरण का काम भूदान यज्ञ कमेटी द्वारा किया जा रहा था कि उसके रास्ते यह परिपत्र बाधाओं का पहाड़ बन गया है। सरकार वितरण के काम को सुनिश्चित करने की बजाय परिपत्र के क्रियान्वयन में जुट गयी है। इन किसानों को भूदान यज्ञ कमेटी में वैध तरीके से निहित नहीं करती तो आज यह नौबत नहीं आती। अधिकारी परिपत्र के आधार पर अलग-अलग जिलों में भूदान किसानों को नोटिस भी भेज रहे हैं। हालांकि भूमि वितरण का काम बिहार और झारखंड में एक साथ हुआ। वहां भी सरकार द्वारा संपुष्ट गैरमजरूआ खास जमीन भूमिहीनों को दी गयी, लेकिन झारखंड सरकार भूदान किसानों पर कोई बुलडोजर नहीं चला रही है।

सरकार का कहना है कि जमींदारों ने जो गैरमजरूआ खास जमीन दान में दिया था, वह दान अवैध है। राजस्व और भूमि सुधार विभाग का कहना है कि दान अवैध इसलिए है कि गैरमजरूआ खास जमीन

जमींदारों की नहीं थी। राज्य की सभी गैरमजरूआ खास जमीन जमींदारी उन्मूलन होते ही सरकार की हो गयी थी। सवाल है कि 1950 में जमींदारी उन्मूलन के बाद जब ये जमीन सरकार की हो गयी तो 1954, 1955, 1956 के वर्षों में जमींदारों ने ये जमीन कैसे दान में दे दी। अगर ये सर्कुलर 1960 तक निकल जाता तो यह बात मानने लायक होती। लेकिन सरकार को खुद उस समय ध्यान में नहीं था। सरकार ने अपनी ही जमीन को संपुष्ट करके भूदान के खाते में निहित कर दी। ऐसे में अब यह सर्कुलर जारी करना क्या सरासर गलत नहीं है।

अब तक तीन लाख से अधिक भूमिहीनों को भूदान की ओर से जमीन दी है, जिसमें करीब डेढ़ लाख भूमिहीनों को जो जमीन दी गयी, वह गैरमजरूआ खास जमीन ही है। इन डेढ़ लाख भूमिहीनों को बाकायदा कानूनी तरीके से प्रमाण पत्र देकर बसाया गया, उसे कैसे बेदखल कर सकते हैं? फिर से उनका कैसे बंदोबस्त करेंगे? इस परिपत्र के जारी होने से ऐसे भूदानी किसान चिन्ता में डूब गये हैं और इस आशंका से त्रस्त हो गये हैं कि अब अधिकारी आयेंगे और उन्हें तरह-तरह की नोटिस देंगे। फिर उन्हें भूदान की जमीन से खदेड़ देंगे। सर्कुलर से भारी अराजकता फैल रही है। परिपत्र के निर्गत होने की वजह से लाखों भूदान किसान प्रभावित हो रहे हैं, जो भूदान किसान वर्षों से भूदान की जमीन पर बसे हैं या जोत आबाद कर जीविकोपार्जन कर रहे हैं और रसीद कटाते आ रहे हैं, उनका रसीद अब राजस्व कर्मचारियों द्वारा नहीं काटा जा रहा है। नये भूदान किसानों का भी रसीद उक्त परिपत्र के आधार पर काटा जाना बंद कर दिया है। जिससे काफी संख्या में दलित गरीब भूमिहीन भूदान किसान अपनी भूमि के दाखिल-खारिज के लिए भटक रहे हैं और बड़ी संख्या में भूदान किसान बेदखल हो रहे हैं और दूसरी ओर भ्रष्टाचार फलने-फूलने की संभावना भी बढ़ गयी है। ❑

सर्वोदय दैनन्दिनी (डायरी) : 2018

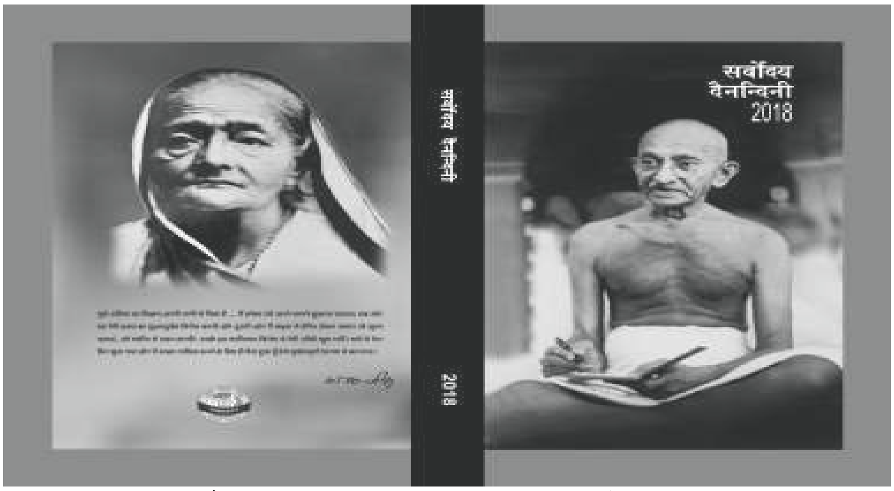

आप जानते ही हैं कि सर्व सेवा संघ प्रकाशन **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** नाम से डायरी का प्रकाशन विगत कई वर्षों से करता आ रहा है। 'बा-बापू 150' को स्मरण करते हुए इस वर्ष गांधी जयंती 2 अक्टूबर के अवसर पर 'सर्वोदय दैनन्दिनी (डायरी) : 2018' (हिन्दी व अंग्रेजी में) आपूर्ति के लिए उपलब्ध रहेगी। प्रकाशन कार्यों में कई तरह के वृद्धि होने के बावजूद भी डायरी की कीमत मात्र रुपये 160/- ही रखा गया है।

गत वर्षों की भांति **'सर्वोदय दैनन्दिनी'** डबल डिमाई साइज में छापी गयी है। **'सर्वोदय दैनन्दिनी :2018'** में 365 दिनों के लिए 365 अलग-अलग पृष्ठ रखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर गांधीजी की ज्ञानवर्धक व जीवनोपयोगी सूक्तियां (हिन्दी व अंग्रेजी) दी गयी हैं।

डायरी विक्रेता एवं भेंट देने वाले शुभचिन्तक व सर्वोदय विचार प्रेमी साथियों से अनुरोध है कि अग्रिम क्रयादेश शीघ्र भिजवायें ताकि हम समय से आपको डायरी की आपूर्ति कर सकें।

आपूर्ति के नियम

1. 1 से 5 डायरी मंगाने पर 10% कमीशन देय होगा, डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
2. 6 से 35 डायरी मंगाने पर 20% कमीशन देय होगा, डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
3. 36 से 100 डायरी मंगाने पर 25% कमीशन देय होगा, डाकखर्च ग्राहक को देना होगा।
4. 101 से 250 डायरी मंगाने पर 30% कमीशन देय होगा। पैकिंग+भाड़ा+डाकखर्च ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
5. 251 से 500 डायरी एक साथ खरीद करने पर 35% कमीशन दिया जायेगा। पैकिंग+भाड़ा ग्राहक को वहन करना पड़ेगा।
6. 501 से अधिक डायरी मंगवाने पर 40% कमीशन एवं स्टेशन पहुंच की सुविधा दी जायेगी। ट्रांसपोर्ट द्वारा भिजवाने का खर्च ग्राहक को देना होगा।
7. बिकी हुई डायरी वापस नहीं ली जायेगी।
8. डायरी की बिक्री पूर्णतया नकद, बैंक के मार्फत होती है।
9. आर्डर भिजवाते समय अपना नाम/पता/मोबाइल नं. और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम साफ-साफ लिखें।
10. डायरी का आर्डर भिजवाते समय 25% रकम अग्रिम अवश्य भिजवायें। डिमाण्ड-ड्राफ्ट 'सर्व सेवा संघ प्रकाशन' के नाम भेजें।
11. रेलगाड़ी की सुविधा नहीं होने पर ट्रांसपोर्ट से पार्सल भेजने के लिए प्रकाशन स्वतन्त्र होगा।

–अरविन्द अंजुम, संयोजक

फसल बीमा योजना घोटाला

❑ **योगेन्द्र यादव**

पिछले दो साल में मैंने सरकार की फसल बीमा योजना के बारे में यह बात कई बार सुनी है कि, ''भाई साहब, यह किसान की फसल का बीमा नहीं है। यह तो बैंकों ने अपने लोन का बीमा करवाया है।'' साल 2015 से लेकर अब तक जब किसान आंदोलन के साथियों के साथ मिलकर मैंने देशभर में 'किसान मुक्ति यात्रा' की। ये यात्राएं उन्हीं इलाकों में हुईं, जहां किसानों पर सूखे या बावजार की मार पड़ी थी। हर सभा में मैं पूछता था, 'क्या किसी किसान को बीमे का भुगतान हुआ?' अधिकांश किसानों ने तो बीमे का नाम ही नहीं सुना। जो किसान क्रेडिट कार्ड वाले थे, उनमें से कुछ पढ़े-लिखे किसानों को पता था कि उनके खाते से बीमे का प्रीमियम कटा है। सैकड़ों सभाओं में मुझे एक-दो से ज्यादा किसान नहीं मिले जिन्हें कभी बीमे का मुआवजा मिला।

धीरे-धीरे मुझे फसल बीमा का गोरखधंधा समझ आने लगा। जिस किसान ने बैंक से लोन लिया है, उसके बैंक खाते से जबरदस्ती बीमा का प्रीमियम काट लिया जाता है। यही नहीं बीमाधारक किसान को बीमा पॉलिसी जैसा कोई भी दस्तावेज तक नहीं दिया जाता। यानी किसान को पता भी नहीं होगा कि उसका बीमा हो चुका है और उसे कब कितना मुआवजा मिल सकता है, अगर पता लग भी गया, तो मुआवजा लेने की असंभव शर्तें हैं। अगर आपकी फसल बरबाद हो गयी, तो मुआवजा पाने के लिए आपको यह साबित करना पड़ेगा कि आपकी तहसील या पंचायत में कम-से-कम आधे किसानों की फसल भी बरबाद हुई है।

पिछले हफ्ते एक साथ कई सूचनाएं सार्वजनिक होने से फसल बीमा योजना का पर्दाफाश हो गया। महालेखाकार (सीएजी) ने 2011 और 2016 के बीच तमाम फसल बीमा योजनाओं के ऑडिट की रिपोर्ट संसद के सामने रखी और सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (सीएसइ) ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के पहले साल का मूल्यांकन करते हुए एक रिपोर्ट छापी। साथ में संसद के इस सत्र में सरकार ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के नवीनतम आंकड़े सदन के पटल पर रखे। इन तीनों स्रोतों से साफ जाहिर होता है कि सरकारी फसल बीमा योजना किसान के साथ कितना भद्दा मजाक है।

सीएजी का ऑडिट 2011 से 2016 के बीच चल रही तमाम सरकारी फसल बीमा योजनाओं के बारे में है। 'राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना', 'संशोधित राष्ट्रीय किसान बीमा योजना', 'मौसम आधारित फसल बीमा योजना' जैसी इन योजनाओं से किसान का कोई भला नहीं हुआ। दो तिहाई किसानों को सरकारी योजनाओं की जानकारी भी नहीं थी। देश के 22 प्रतिशत किसानों का ही बीमा किया जा सका, वह भी सर्वश्रेष्ठ साल में बीमाधारकों में 95 प्रतिशत से अधिक किसान वो थे, जिन्होंने बैंकों से ऋण लिया। अधिकतर मामलों में बीमे की राशि ठीक उतनी ही थी, जितना बैंक का बकाया ऋण था। यानी किसान कार्यकर्ताओं की शिकायत वाजिब थी। बैंक मैनेजरों ने ऋण की वापसी सुनिश्चित करने के लिए किसान से बिना पूछे, बिना बताये उनका बीमा करवा दिया।

सीएजी की रिपोर्ट इस आरोप की भी पुष्टि करती है कि बीमे का मुआवजा बहुत कम किसानों तक पहुंचा है। कभी सरकार ने अपने हिस्से का प्रीमियम नहीं दिया, तो कभी बैंक ने देरी की। सरकारी और प्राइवेट बीमा कंपनियों ने खूब पैसा बनाया। रिपोर्ट प्राइवेट बीमा कंपनियों के घोटाले की ओर भी इशारा करती है। सरकार ने कंपनियों को पेमेंट कर दिया, लेकिन कंपनियों ने किसान को पेमेंट नहीं किया। कंपनियों से यूटिलाइजेशन सर्टिफिकेट तक नहीं मांगा गया। नियमों का उल्लंघन करते पकड़ी गयी कंपनियों को ब्लैक लिस्ट नहीं किया गया। किन किसानों को पेमेंट हुई, उसका रिकॉर्ड तक नहीं रखा।

अगर आप मोदी सरकार से इस रिपोर्ट के बारे में पूछें तो हमारे मंत्री कहेंगे कि यह तो पुरानी बात है। पुरानी योजनाएं अब बंद हो गयी हैं। अब इनके बदले नयी 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' आ गयी है। केन्द्र सरकार ने इस नयी योजना में पिछले साल की तुलना में चार गुना पैसा खर्च किया। लेकिन बीमाधारी किसानों की संख्या 22 प्रतिशत से बढ़ कर 30 प्रतिशत ही हो पायी। इस योजना में भी लोनधारी किसानों को ही शामिल किया गया। पिछले योजनाओं की तरह छोटे किसान और बटाइदार इस योजना के लाभ से भी वंचित रहे हैं। योजनाओं के नाम बदल जाते हैं, पर सरकारी काम नहीं बदलते।

हां, इस साल कंपनियों ने रिकॉर्ड मुनाफा जरूर कमाया। लोकसभा में 18 जुलाई को दिये गये उत्तर के अनुसार, 2016 की खरीफ फसल ने कंपनियों को किसानों और सरकारों से कुल मिलाकर 15,685 करोड़ रुपये का प्रीमियम मिला और अब तक किसानों को सिर्फ 3634 करोड़ रुपये के मुआवजे का भुगतान किया गया। इसका कारण सिर्फ अच्छी बारिश और फसल नहीं थी। तमिलनाडु में रबी की फसल में पिछले 140 साल का सबसे भयानक सूखा पड़ा। वहां कंपनियों को 954 करोड़ रुपये का प्रीमियम मिला और अब तक सिर्फ 22 करोड़ रुपये के मुआवजे का भुगतान हुआ है।

31 जुलाई को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अंतर्गत खरीफ का बीमा करवाने की अंतिम तारीख थी। बीमा कंपनियां, बैंक मैनेजर, सरकारी बाबू और नेता—सब फसल बीमा के लिए लालायित हैं, सिवाय बेचारे किसान के। ❑

किसानों की त्रासदी

भारतीय किसान संगठित क्यों नहीं होते?

❑ अशोक मोती

पूरे देश में कमोवेश किसान आज उद्वेलित दीख रहे हैं। मध्य प्रदेश के मंदसौर में जहां किसान कब से आंदोलनरत रहे, उन्हें पुनः सड़कों पर उतरना पड़ा। छत्तीसगढ़, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश के साथ-साथ उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में भी किसानों का असंतोष उभर कर सामने आ रहा है। इन्होंने कमोवेश संगठित होकर दिल्ली के जंतर-मंतर तक अपनी दस्तक दी है। पिछले कुछ समय से देश में किसानों की हो रही आत्महत्या ने दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। सवाल है कि अवसाद में जी रहा अन्नदाता भारतीय किसान एकजुट होकर अपने को उबार पायेंगे?

राजनैतिक दल भी विभिन्न राज्यों में अलग-अलग किसान आंदोलन को नेतृत्व करने की कोशिश कर रहे हैं और संभवतः इनकी यह भी इच्छा है कि इसे एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप दिया जाये। क्या यह दोनों संभव है? आंदोलन मात्र हवाई बातचीत या आह्वान से संभव नहीं होता। समस्याएं जब सामूहिक समस्याएं बनकर उभरती हैं, लाखों-करोड़ों आवाज जब एकबद्ध होकर गूंजती है, तब कहीं आंदोलन खड़ा होता है।

इसमें कोई शक नहीं कि मध्य प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में जिस ढंग से किसानों ने आवाज उठायी है, उसे आंदोलन की प्रारम्भिक स्थिति तो कह ही सकते हैं; परंतु इसे और भी संगठित और मुखरित होना है। कहीं गन्ने तो कहीं प्याज और कहीं जूट की कीमत बढ़ाने की मांग से न तो व्यापक स्तर पर किसान ही संगठित हो सकते और न ही किसान आंदोलन ही राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा किया जा सकता है। यह ठीक है कि बड़े किसान आंदोलन का नेतृत्व करें, परंतु वे जब सिर्फ कृषि उत्पादन की कीमत बढ़ाने की मांग करते हैं, तो इसमें उनका स्वार्थ स्पष्ट दीखता है जो किसान आंदोलन के भविष्य के लिए खतरनाक है।

भारतीय किसान संगठित क्यों नहीं हो पाते? : जब हम भारतीय किसान के चरित्र, रहन-सहन, स्वभाव, संस्कृति तथा उसकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो किसान आंदोलन के सामने एक प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाता है—क्या भारतीय किसान भी संगठित हो सकते हैं, सफल आंदोलन कर सकते हैं? यह संदेह अनायास एवं निराधार नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इससे जुड़ी हुई है।

प्रश्न है, किसान हैं कौन—वे जिनके पास भूमि है या वे जो जीवनयापन के लिए कृषि पर निर्भर हैं तथा अपनी श्रमशक्ति इसमें लगाते हैं? हमारे देश में कृषक स्वामित्व कृषि प्रणाली प्रचलित है और अधिकांश किसान छोटी जोत वाले किसान हैं। वर्तमान आर्थिक ढांचे में मिला-जुलाकर इनके पास बचत की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। प्राकृतिक निर्भरता या मौसम की रंगत से जुड़ा भारतीय कृषक भाग्य के भरोसे जीने वाला एक जमात है और इसीलिए रूढ़िवादी भी है। इस तरह भारतीय किसान अपनी रूढ़िवादिता, शिथिलता, व्यक्तिवादिता तथा अपने जीवन की एकरूपता के कारण संगठित नहीं हो पाते।

आज किसान कोई वर्ग नहीं है। यह कई जातियों, पार्टियों, भाषा-भाषियों एवं संप्रदायों में बंटकर असंगठित है। प्राकृतिक दृष्टिकोण से भी पूरे देश के किसानों की समस्या एक नहीं हो सकती। महाराष्ट्र के किसानों के लिए जो समस्या है, वह बिहार के किसानों के लिए भी समस्या हो, कोई जरूरी नहीं। और जब तक राष्ट्रीय स्तर पर किसानों की आम समस्या निर्धारित नहीं होती, राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन भी नहीं हो सकता। एक प्रांत में भी कई श्रेणी के किसान हैं और सबकी अलग-अलग समस्याएं हैं।

यह सही है कि भारतीय किसान अत्यन्त भावुक हैं। अतः मूर्खता की हद तक की अपनी भावुकता के कारण ये भले ही कोई आंदोलन बड़े जोश से शुरू कर दें परंतु इसे कब तक टिकाये रख सकेंगे यह अनिश्चित है। किसानों में सही नेतृत्व का सर्वथा अभाव इसका एक प्रमुख कारण है। यही कारण है कि (मौसम की मार खाता किसान जो वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक ढांचे से भी शोषित हो रहा है) शोषण के विरुद्ध सदियों से आंदोलन करने के बाद आज भी शोषित और असंगठित आंदोलन का इतिहास है।

भारत के विभिन्न प्रांतों में किसान आंदोलन विभिन्न रूप में उभरकर सामने आते हैं। 1857 का गदर, जिसमें करोड़ों किसानों ने भाग लिया था, किसान आंदोलन का ही एक रूप था। किसानों ने अपनी धार्मिक, सामाजिक शुद्धता के कारण जमींदारों, भूपतियों एवं पूंजीपतियों से जो संघर्ष किया उसी के विभिन्न रूप थे वहावी आंदोलन (बंगाल, पंजाब, बिहार, मद्रास), फर्जी आंदोलन (बंगाल), कुका आंदोलन (पंजाब) आदि।

1850 के बाद किसानों ने अपनी मांगों को लेकर सीधे हुकूमत से लड़ना प्रारंभ किया था। 1857 में महाराष्ट्र के पुणे एवं अहमदनगर जिले में राजस्व-कर की वृद्धि एवं किसानों को सस्ते दर पर सरकार द्वारा पूंजी नहीं उपलब्ध कराये जाने के कारण आंदोलन जोरों से भड़का था। उत्तर केरल में मालावार के मोपिला किसानों ने जेनमीस-प्रथा के विरुद्ध 1836 से 1854 तक 22 बार विद्रोह किया। यह विद्रोह फिर 1873-80 तक पांच बार भड़का। 1856 में बिहार के आदिवासी इलाके में संथालों का विद्रोह भी

किसान आंदोलन का ही एक रूप था। असम के समतल प्रक्षेत्र में भी 1893-94 में किसानों ने कई बार विद्रोह किया।

आधुनिक युग में पश्चिम बंगाल में 1859 का नील आंदोलन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण आंदोलन है। बिहार के दरभंगा एवं चम्पारण जिले में 1866-68 में बड़े पैमाने पर किसान आंदोलन हुआ था। 1870-76 तक उत्तर बंगाल के किसानों द्वारा इस्ट इण्डिया कंपनी के विरुद्ध आंदोलन 1883 और 1889-90 में बंगाल के जैसोर के किसानों का आंदोलन किसान आंदोलन के इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ियां हैं।

19वीं सदी में किसानों का कोई सम्मिलित प्रयास नहीं शुरू हुआ। आदिवासी क्षेत्रों में बिलकुल क्षेत्रीय समस्याओं को लेकर छिटपुट विद्रोह अवश्य हुए, जो मुख्यतः जमींदारों एवं पूंजीपतियों के खिलाफ थे। आखिर छिटपुट, असंगठित किन्तु अनगिनत विद्रोह भी आधुनिक साम्राज्यवाद को समाप्त क्यों नहीं कर सका? स्पष्टतः किसानों के पास समाज के पुनर्निर्माण की कोई निश्चित धारणा नहीं थी और न ही जीवन जीने की नयी पद्धति ही जिसकी वजह से किसान बड़े पैमाने पर संगठित हो पाते।

20वीं सदी में किसानों का असंतोष व्यापक एवं सामूहिक रूप से साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन एवं किसान आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया। इसमें कोई शक नहीं कि यह किसान आंदोलन कवायली विद्रोह और किसान विद्रोह के ही परिणाम थे। बिहार में 1920-21 में सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में वसाख्त आंदोलन एवं 1931 में गांधीजी के नेतृत्व में चम्पारण का नील आंदोलन, 1974 में 'हिन्द किसान पंचायत' (प्रथम अध्यक्ष जयप्रकाश नारायण) के नेतृत्व में बिहार का 'पटना मार्च' एवं उत्तर प्रदेश का 'लखनऊ मार्च' किसान आंदोलन के आधुनिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाएं हैं।

किसान आंदोलन के इस लंबे इतिहास के बावजूद भारतीय किसान राष्ट्रीय स्तर की बात दूर प्रांतीय स्तर पर भी संगठित नहीं हुए, यह एक त्रासदी है।

किसान आंदोलन और राजनैतिक दलों का चरित्र : तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र का आंदोलन कोई एक दिन की उपज नहीं है। इन राज्यों में किसानों का अपना एक संगठन है। 'तमिलनाडु व्यावसायिगल संगम' एवं 'शेतकरी संघटना' जैसी संस्थाओं ने किसानों के बीच चेतना जगाकर उनकी आवाज मुखर की है। इन प्रदेशों का आंदोलन स्वयंस्फूर्त, समस्याओं के बीच से निकला हुआ आंदोलन है और उसका चरित्र भी परिवर्तनकारी है जबकि बिहार (राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में भी) में राजनैतिक दल वाले किसान आंदोलन को 'एडाप्ट' करने की कोशिश कर रहे हैं। इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि बिहार के किसानों की समस्याएं नहीं हैं या उनमें असंतोष नहीं है। किसानों में यहां भी असंतोष है, परंतु राजनैतिक दल वाले इस असंतोष में अपनी-अपनी रोटियां सेंकना चाहते हैं। राष्ट्रीय योजना के स्वरूप को बदलने और इसे कृषिमूलक बनाने की बात कोई नहीं करता। आवश्यक आवश्यकताओं की मूल्य वृद्धि, कृषि लागत में वृद्धि, सिंचाई योजनाओं का पूर्णरूपेण कार्यान्वयन न होना, पानी के जमाव से फसल की क्षति आदि कई समस्याएं हैं जिसे समाधान की मांग किसी दल वाले नहीं कर रहे हैं। किसानों ने ही छिटपुट ढंग से इन समस्याओं के हल के लिए आवाजें उठायी हैं और अपना असंतोष प्रकट किया है। किन्तु सभी दल किसानों की उभरती आवाज को मात्र एक घटना के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं, जबकि यह तो एक प्रक्रिया है, जो ब्रिटिश साम्राज्य से आरंभ हुई थी और अब प्रौढ़ होकर सामने आना चाह रही है।

कोई भी राजनैतिक दल किसानों की बुनियादी समस्याओं को नहीं उठा रहा है, बल्कि कृषि उत्पादन की मूल्यवृद्धि ही इस आंदोलन का मुख्य मुद्दा है जो बहुत ही संकीर्ण है। विभिन्न तबके के किसान इस मुद्दे पर एकमात्र नहीं हो सकते। किसान का एक बड़ा तबका जो भूमिहीन किसान हैं, जो भारतीय कृषि व्यवस्था के मेरुदण्ड हैं और जिन्हें अन्न बाजार से खरीदना पड़ता है, वे कृषि उत्पादन खासकर खाद्यान्न की मूल्य वृद्धि का विरोध स्वाभाविक रूप से करेंगे। परंतु किसान आंदोलन पर राजनैतिक दल द्वारा किसी भी रूप में हावी होने की कोशिश पूरे देश में हो रही है, जो किसानों को अपने बुनियादी सवालों को लेकर पृथक शक्ति के रूप में उभरने से रोकने का एक सुनियोजित षड्यंत्र है या किसानों की शक्ति के बंदरबांट का एक अच्छा प्रयास।

देश में पहली बार किसान को राजनैतिक आधार बनाने की कोशिश व्यापक तौर पर हो रही है। स्वाभाविक रूप से किसान का महत्त्व बढ़ रहा है और उनमें खुद भी यह विश्वास जम रहा है कि देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में उसकी भी एक पृथक हैसियत है। यह सजगता उनके असंतोष को शब्द दे सकती हैं जो राजनैतिक दल वालों के राजनैतिक अस्तित्व के लिए खतरनाक भी सिद्ध हो सकती है। किसानों का अपना राजनैतिक नेतृत्व भी उभर सकता है। किन्तु इनमें राजनैतिक नेतृत्व उभरने देने में सबसे बड़ी बाधा राजनैतिक दलां द्वारा इनकी मांगों को इनके स्वार्थ से जोड़ने का प्रयास है। इसमें सामाजिक परिवर्तन के तत्त्व नहीं हैं। संकीर्ण मांगों से उठा आंदोलन दूरगामी नहीं हो सकता। संकीर्णता के आधार पर (महाराष्ट्र में प्याज की, बिहार में जूट की कीमत बढ़ाओ और उत्तर प्रदेश में गन्ने की) राष्ट्र के नव-निर्माण का राष्ट्रीय प्रयास भी नहीं हो सकता।

देश की आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर बिना विचार किये मूल्यवृद्धि की मांग एवं इसके लिए संघर्ष, रचनात्मक विरोध नहीं हैं। मात्र कृषि उत्पादक वस्तु की कीमत बढ़ाकर किसानों को शोषण से मुक्ति नहीं मिल सकती। आज के विपक्षी, जो कल सत्ताधारी थे, जिस मुद्दे पर संघर्ष कर रहे हैं, मात्र विरोध के लिए ही विरोध कर रहे हैं,

जिससे लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका तो खंडित होती है, इससे किसान आंदोलन की व्यापकता पर भी आघात होता है। विपक्ष की यह भूमिका संसद में विपक्ष की भूमिका जैसी है। डॉ. लोहिया ने जो पंडित नेहरू का विरोध किया था वह एक ऐतिहासिक, रचनात्मक विरोध था और वह आज के विपक्ष के विरोध की नीति से भिन्न था।

किसान आंदोलन का इतिहास एक त्रासदी : आज कोई भी दल यह क्यों नहीं कहता कि कृषि उत्पादन एवं औद्योगिक उत्पादन की मूल्यवृद्धि के अनुपात में एक तारतम्य हो, छोटे किसानों को कृषि कार्य हेतु सहायता दी जाये, कृषि उत्पादन की कीमत स्थिर की जाये, बाजार में व्यापारियों एवं विचौलियों का वर्चस्व समाप्त हो, भूमिहीन किसानों के बीच अतिरिक्त भूमि का वितरण हो? इसके लिए वे कोई आंदोलन क्यों नहीं खड़ा करते?

किसानों के बीच जो अर्द्धबेरोजगारी की समस्या है तथा अदृश्य बेरोजगारी (जिस भूमि पर कार्य करने के लिए दो व्यक्ति समर्थ हैं उसमें दस व्यक्ति लगे हुए हैं), गांव में शुद्ध पेयजल, स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि स्थिति समाप्त करने की मांग कोई दल वाले क्यों नहीं करते? कृषि पर निर्भर रहने वाले समाज के अन्य लोग—बढ़ई, लोहार, कुम्हार, जुलाहा, हजाम एवं मोची की ओर किसी का ध्यान क्यों नहीं जाता? उत्पादन की सीमा शहरी एवं ग्रामीण लागत पर समान अनुपात में लागू करने की बात ये क्यों नहीं करते?

दलों की बेइमानी स्पष्ट है। ये किसानों के उत्थान की मूलभूत बातें सामने रखना नहीं चाहते, इनकी क्षणिक स्वार्थ सिद्ध कर इन्हें अपनी राजनैतिक सफलता के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। विपक्ष (चाहे वह आज का सत्ताधारी दल ही क्यों न हो) जब ये सत्ता में नहीं रहते, ऐसी मांगों के लिए वचनवद्ध नहीं होना चाहते जिसे बाद में (जब वह दल सत्ता में आ जाये) लागू करने में उन्हें काफी परेशानी उठानी पड़े। फिर कोई भी दल आज उस वर्ग पर भी चोट नहीं करना चाहता जो आज की आर्थिक व्यवस्था का पोषक है।

आज की अर्थ-व्यवस्था का पोषक है औद्योगिक वर्ग और किसान आंदोलन अगर सफल होता है तो इसका सीधा असर उद्योगपतियों पर होगा जिसके लिए कोई दल तैयार नहीं दीखता। इसीलिए सभी दल अलग-अलग किसान आंदोलन का नेतृत्व करने का प्रयास कर रहे हैं।

वस्तुतः आज जो देश में राजनीति चल रही है उसके केन्द्र में मात्र सत्ता प्राप्त करने की लालसा है। यही कारण है कि आज सत्ता के बिना कोई दल समस्याओं के समाधान की कल्पना भी नहीं कर सकता। सत्ता ही समस्याओं का समाधान कर सकती है, यह मान्यता तो खंडित हो चुकी है। सभी दल नाकामयाब रहे हैं। इसलिए सत्ता से बाहर रहने पर सिर्फ विरोध के लिए विरोध करना इसे शोभा नहीं देता। दूसरी तरफ वर्षों से विपक्ष में रहा भाजपा जो अभी सत्ता में है, वह अपना दायित्व निर्वहन में सिर्फ जुमले का प्रयोग तो न करे। उसे विपक्षी दलों से मिलकर समस्याओं के समाधान का प्रयास तो करना ही चाहिए।

इन्हें सोचना चाहिए कि जाति, धर्म, दल, स्तर-वर्ग एवं इलाके की संकीर्ण मांगें समाज के विभिन्न वर्गों के असंतोष को संगठित नहीं होने दे सकती और जब तक समाज का हर तबका एक-दूसरे के असंतोष से जुड़कर सर्वमान्य परिवर्तनकारी मांगें नहीं रखता किसी भी वर्ग का कल्याण संभव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि किसी भी वर्ग के असंतोष को एक सही दिशा दी जाये एवं समस्याओं के समाधान हेतु सर्वदलीय नीति निर्धारित की जाये वरना राष्ट्र टूटेगा। ❑

शोक-संदेश

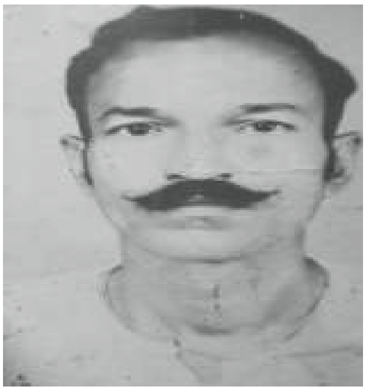

सर्व सेवा संघ प्रकाशन एवं परिसर, वाराणसी के पूर्व संयोजक श्री शिवविजय भाई के पूज्यनीय पिताश्री रघुनन्दन सिंह का 6 सितंबर, 2017 को सुबह 8 बजे गांव गढ़ा, जिला-हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) में निधन हो गया। आप 87 वर्ष के थे।

स्व. रघुनन्दन सिंह भारतीय डाक विभाग में अपनी महत्त्वपूर्ण सेवाएं देकर वर्ष 1997 में सेवानिवृत्त हुए थे। आप प्रेमल स्वभाव एवं बेहद मिलनसार व्यक्ति थे। जीवनपर्यंत आप समाज से जुड़कर रहे। समाज में बड़ी शख्सियत के रूप में तथा प्रतिष्ठा व सम्मान के साथ आपकी पहचान थी। अपने सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण ही स्व. रघुनन्दन सिंह वर्ष 2000 एवं 2005 में लगातार दो बार ग्राम प्रधान चुने गये।

शिवविजय भाई के मामा श्री अर्जुन भाई विनोबाजी के संपर्क में रहे, जिनसे प्रेरित होकर स्व. रघुनन्दन सिंह ग्राम समाज के उत्थान में लग गये और अंतिम समय तक गांव में आपसी सौहार्द एवं गांव के विकास के लिए आपने उल्लेखनीय कार्य किया। परिणामस्वरूप ग्रामीण बच्चों को जीवनोपयोगी शिक्षा मिल सके, गांव में जूनियर हाईस्कूल की आपने स्थापना की।

गांधी-विचार की जीवंतता बनाये रखने की संकल्पना आपके विचार में रच-बस चुकी थी। गांव में ही अपनी निजी जमीन दान में देकर आपने *'समग्र सेवा आश्रम'* की स्थापना की, जिसका उद्घाटन आचार्य विनोबा द्वारा स्थापित ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार की प्रवीणा बहन देसाई ने किया।

आपके निधन पर सर्व सेवा संघ, प्रकाशन एवं सर्वोदय जगत परिवार अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करते हुए उनकी आत्मा कीं शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

–स.ज. प्रतिनिधि

'बा'

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

कस्तूर की पहली और कठिन परीक्षा बीचग्रोव विला में ही हुई थी। वह उसकी ऐसी परीक्षा थी जिसमें कुछ भी हो सकता था। एक परंपरागत और अनपढ़ महिला विदेश में असहाय थी। उस घटना की याद करके वह बाद में भी कांप उठती थी। मोहनदास ने जबसे अपने दफ्तपर के लोगों को विला में रखा था एक नियम बना दिया था कि वहां रहने वाले सब संवासी अपने कमरों में रखे चेंबर-पाट्स (रात में पेशाब के लिए इस्तेमाल होने वाला बर्तन) सुबह उठकर स्वयं खाली करके और धोकर रखेंगे। साथ में यह भी उपनियम था कि अगर किसी कमरे में बर्तन छूट जाये मोहनदास स्वयं खाली करेंगे और कस्तूरबा उनकी सहायता करेगी। उपनियम के अनुपालन का कभी अवसर नहीं आया था इसलिए नापसंद होने के बावजूद कस्तूरबा ने कोई आपत्ति नहीं की थी। फिर भी यह सवाल उसके दिमाग में घूमता रहता था कि उसके पति को यह उपनियम बनाने की जरूरत ही क्या थी। अगर बनाया तो इस गंदे काम को क्यों जोड़ा? क्या कोई अपनी पत्नी से दूसरों की गंदगी साफ कराता है? क्या उसका पति उसे विदेश में इतना नीचे गिराकर अपमान करने के लिए ही लाया है? ये सवाल उसे हर समय मथते थे। एक आक्रोश और था, उसने इस तरह का काम करते निम्न वर्ग में माने जाने वाले लोगों को देखा था। इन बातों से उसका मन विरोध से भर गया था। जो व्यक्ति हर किसी की मान्यताओं और भावनाओं का ध्यान रखता है वह अपनी पत्नी के प्रति इतना लापरवाह कैसे हो सकता है! वह यही प्रार्थना करती रहती थी कि उसका पति ऐसी स्थिति न आने दे जब उसे विरोध करने के लिए बाध्य होना पड़े।

लेकिन न चाहते हुए भी वह दिन आ ही गया। एक नया मेहमान आया। वह ईसाई था। लेकिन भारत के सफाई करने वाले वर्ग से आता था। उसे विला के नियम कायदों का पता नहीं था। उसने रात का बर्तन कमरे में ही छोड़ दिया। कस्तूर ने सोचा पहली जिम्मेदारी मोहनदास की है, वे स्वयं करेंगे। हालांकि पति द्वारा इस तरह के काम किया जाना उतना ही बुरा लगता था जैसे उसे स्वयं करना पड़ रहा हो। लेकिन उस दिन बर्तन स्वयं न खाली करके उनहोंने कस्तूरबा से खाली करने के लिए कहा। वह तिलमिला गयी। वह उस वक्त तो बोली नहीं। रोते हुए बर्तन उठाकर नीचे चली गयी और जीने के नीचे ले जाकर उड़ेल दिया। उसे बेपर्दगी की तरह लगा। मोहनदास ऊपर से देख रहे थे। वे चाहते थे कि कस्तूर उस बर्तन को लेकर, सेवा भाव से, खुशी-खुशी जाये। खुशी की बात तो उनको भी नहीं लगती होगी जो इस काम को पता नहीं कब से करते आ रहे हैं। क्या किसी पर-पुरुष की गंदगी को एक महिला से ढुलवाना काफी नहीं था?

मोहनदास वहीं से चिल्लाए, 'मेरे घर में इस तरह की मूर्खता की कोई जगह नहीं।' कस्तूर को लगा, वे शब्द उसके दिल को चीरते हुए निकल गये। वह गुस्से से बोली, 'रखो अपना घर अपने पास, मैं चली जाऊंगी।'

मोहनदास आपा खो चुके थे। उनकी करुणा का स्रोत जैसे कस्तूर के उत्तर ने सोख लिया था। उन्होंने आकर उसकी बांह पकड़ी और असहाय अवस्था में घसीटते हुए दरवाजे की तरफ ले गये। बाहर धकेलने के लिए दरवाजा खोला। उसकी आंखों से लगातार आंसू बह रहे थे। वह चिल्लाई, 'क्या तुम हया-शर्म सब खो चुके? तुम अपने होश इस हद तक खो चुके, यह भी नहीं सोचा कि इस परदेस में मैं कहां जाऊंगी? मेरे ना यहां मां-बाप हैं, न कोई संबंधी जो पनाह दे सकें। तुम्हारी पत्नी होने का यह मतलब है कि मैं तुम्हारे हाथों अपमान सहूं? इस तरह के दृश्य दिखाकर यहां के लोगों को अपना वहशीपन दिखाना चाहते हो?'

बच्चे असहाय-से देख रहे थे। उनकी आंखों में मूक याचना थी...। मोहनदास ने हाथ छोड़ दिया और गर्दन झुका ली। हो सकता है, उन्हें पीटर्सबर्ग में रेल से फेंके जाने की घटना याद आ गयी हो। कस्तूरबा भी उस समय वैसी ही मानसिक यंत्रणा से गुजर रही थी...शायद बच्चे भी...

कस्तूरबा और मोहनदास उस घटना को भुलाकर भविष्य की सोच रहे थे। कोई किसी से कुछ नहीं कह रहा था। पर उस घटना को भुलाने की मन ही मन दोनों ने कोशिश की थी। उस घटना की पुनरावर्ती न

हो कसम खायी थी। इस बीच एक सुख घटना घटी थी, कस्तूर के गर्भ में नया मेहमान आ चुका था। लेकिन इस बार परेशानी कुछ ज्यादा थी। जल्दी थक जाती थी। गुस्सा भी आने लगा था। उसे राजकोट की अक्सर याद आती थी। पहले दोनों बच्चे वहीं हुए थे। दोनों जिठानियां हाथोंहाथ लेती थीं। यहां स्थिति भिन्न थी, हर काम देखना पड़ता था। करो भी, सहो भी। सब कुछ सहा पर, कभी कुछ नहीं कहा। घर पूर्ववत् चल रहा था। नये बच्चे के जन्म की तैयारी कर रही थी। वह अपने तईं अकेली थी। नया देश था। सब कुछ नये ढंग से करना था। बीचग्रोव विला में दूसरे घरों की तरह जच्चा-घर भी नहीं था। सब कुछ खुला था। अगर मोहनदास राजकोट में होते तो सब कुछ घर वालों पर छोड़कर निश्चिन्त हो गये होते। लेकिन यहां सब कुछ उन्हें ही सोचना और करना था। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी को सर्वोत्तम चिकित्सा सुविधा मिले। दोनों के बीच तय हुआ कि डॉक्टर को तभी बुलाया जाये जब प्रसव का समय आ जाये। सबसे बड़ी कठिनाई थी कि कस्तूर पुरुष डॉक्टर बुलाने के खिलाफ थी। इस बात के लिए मोहनदास को कस्तूर को राजी करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा था। प्रसव जनाना कर्मकांड है। पुरुष डॉक्टर का आना, भले भारतीय हो, कस्तूर को अनैतिक लगता था। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में ऐसे जनाने कामों के लिए अधिकतर पुरुष डॉक्टर ही उपलब्ध थे।

दूसरी समस्या नर्स की थी। यह तय हो गया था कि देखभाल के लिए नर्स रखी जायेगी। लेकिन कस्तूर गोरी नर्स रखने के पक्ष में नहीं थी। उसका तर्क था कि मोहनदास दिन-भर दफ्तर में रहेंगे वह उसके साथ संवाद किस तरह करेगी, डरबन में भारतीय नर्स का मिलना मुश्किल था। मोहनदास का मानना था यूरोपियन नर्स अपेक्षाकृत समझदार और साफ-सुथरी होती है। आखिर कस्तूरबा ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। वह दो बच्चों की मां है, अपने बच्चे की देखभाल कर लेगी। भारत में होते तो क्या नर्स रखी जाती? दोनों बच्चों की परवरिश तो उसने ही की थी। भारत में होते तो क्या नर्स रखी जाती? दोनों बच्चों की परवरिश तावे उसने ही की थी। बच्चे को वह देखती थी, दूसरे काम और लोग कर लेते थे। बच्चे बड़े हो गये थे, वे खुशी से मदद करने को तैयार थे। मोहनदास भी खुशी-खुशी सहायता समिति के सदस्य हो गये थे। उनका मानना था कि जब मां प्रसव की पीड़ा सह सकती है तो पिता का भी दायित्व बनता है कि वह बच्चे की देखभाल करे। उसके लिए मोहनदास ने बच्चों के लालन-पालन संबंधी गुजराती में लिखी किताब 'माताओं को सलाह' पढ़कर अपने को आने वाले बच्चे की सेवा के लिए तैयार कर लिया था।

मई 1898 में तीसरे बच्चे का जन्म हुआ। प्रसव में काफी कठिनाई हुई थी। मोहनदास डॉक्टर की सहायता मुस्तैदी से कर रहे थे। प्रसव के बाद कस्तूरबा काफी कमजोर हो गयी थी। कई हफ्ते बिस्तर से नहीं उठ सकी थी। यहां तक कि बच्चे को दूध पिलाना भी कठिन लगता था। मोहनदास ने मां और बच्चे की देखभाल में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। बड़े बच्चों को भी नहाने-धोने में मदद करते थे। बच्चे नये मेहमान से तो खुश थे ही पर बापू से सेवा कराने में भी मजा आ रहा था।

बच्चे के जन्म के बाद कस्तूरबा को सामान्य होने में कई महीने लग गये थे। इस बीच मोहनदास को अपनी समस्याओं के बारे में सोचने का समय नहीं मिल पाया था। जब से कस्तूरबा कुछ संभली थी वह लगातार देख रही थी कि उसके पति अंदर ही अंदर किसी समस्या से जूझ रहे हैं। उसे सुलझाने में वह उनकी मदद कर सकती है? भारत में रहते हुए उसकी चिन्ता थी कि उसका पति सबसे काबिल होते हुए योग्यता के अनुसार कमा नहीं पाता है। तब उसे यह बात कचोटती थी। दक्षिण अफ्रीका में आने पर उनकी आमदनी बहुत बढ़ गयी थी। दफ्तर में बारह आदमी काम करते थे। प्रेक्टिस से आमदनी पचहत्तर हजार पौंड यानी सवा लाख डॉलर्स थी। इस सबके बावजूद मोहनदास इतने परेशान थे! यह सवाल कस्तूरबा के लिए भी परेशानी का कारण बन गया था। एक दिन मोहनदास ने स्वयं ही कहा, 'विला में इतना सुख-सुविधापूर्ण जीवन अपने को दमनात्मक लगता है।'

कस्तूरबा को सुनकर विचित्र लगा। साथ ही खुशी भी हुई, मोहनदास के मन की बात पता तो चली।

वे बोले, 'हमें अपने खर्च कम करने पड़ेंगे। जीवन सरल बनाना होगा। घर का खर्च कम करना ही एकमात्र रास्ता है। उससे हमारी कमाई पर दबाव कम होगा। कमाई का बड़ा हिस्सा हम सामाजिक कार्यों पर खर्च कर सकेंगे। आत्मनिर्भरता अल्प व्यय से ही संभव होती है।'

सबसे पहला आक्रमण नौकरों पर हुआ, नौकरों को हटा दिया गया। तय हुआ कि बच्चों समेत सब लोग अपने काम के साथ घर भी संभालेंगे। सबसे ज्यादा जिम्मेदारी कस्तूरबा पर आयी। बच्चों की देखभाल के साथ घर के लोगों और आवासियों का खाना बनाना, परसना सबसे भारी काम था। कस्तूरबा सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुंची कि ऐसा करने से परिवार में रहने वाले सदस्य एक दूसरे के नजदीक आयेंगे। मोहनदास सवेरे जल्दी उठ जाते थे। सबसे पहले अपने कपड़े धोते थे। अदालत जाने के लिए उन्हें रोज कमीज और कॉलर बदलने होते थे। कपड़े धोने की कला जानने के लिए उन्होंने एक किताब खरीदी थी। उसे गौर से और जोर से पढ़ते थे। जिससे कस्तूरबा भी सुन सके। दरअसल मोहनदास से ज्यादा किताब की जरूरत कस्तूरबा को थी।

... क्रमशः अगले अंक में

शहादत को नमन्

हत्या की राजनीति : गांधी से गौरी तक

जिस आजादी के मिलने पर साम्राज्यवादी हुकूमत के नीचे कितने भारी कष्ट और यातनाएं सहने वाले गांव के गरीब से गरीब किसानों की निराशापूर्ण आंखें खुशी से चमक उठी, हरएक दबे और कुचले हुए पुरुष और स्त्री ने कितने हार्दिक उल्लास के साथ पहली बार स्वतंत्रता दिवस मनाया, आज उनकी उमंग और आवाज दोनों कुचलने की चेष्टा हो रही है और उनके जीवन की मूलभूत समस्याएं उसी तरह विद्यमान हैं।

स्पष्टतः गांधी जब स्वतंत्रता के लिए प्राण-प्रण से जूझ रहे थे तो उनके मन में सिर्फ आजादी प्राप्त करने की बात नहीं थी। वे देश की आजादी प्राप्त करने के साथ-साथ देश में आधुनिकता की उस संकल्पनाओं से दूर ऐसे मनुष्य का निर्माण भी करना चाहते थे, जो भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हो, जिससे कि इन मनुष्यों से एक नयी सभ्यता की संरचना विकसित हो सके। गांधी एक तरफ भारतीय मानस को पारंपरिक जड़ताओं और औपनिवेशिक जकड़नों से दूर रखना चाहते थे, दूसरी ओर आध्यात्म को आधुनिकता से स्वायत रखने का भी प्रयास कर रहे थे। यानी गांधी के सामने दोहरी चुनौती थी। वे किसी भी तरह अपनी राह को संकीर्ण नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए 'स्वतंत्रता' के तंग व अपर्याप्त शब्द की जगह उन्होंने इसे 'स्वराज' कहा और स्वराज प्राप्ति के लिए 'सत्य' और 'अहिंसा' की राह पर चलना अपरिहार्य माना। वीरता के लिए 'पुरुषार्थ' तथा 'त्याग' की आवश्यकता पर बल दिया।

दरअसल गांधी तो 'हिंसा' और 'शोषण' पर टिकी पूरी विकृत सभ्यता जैसी आज दीख रही है, का विकल्प गढ़ने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन आज देश में 'सत्ता' और 'शक्ति' पर वर्चस्व की घमासान लड़ाई चल रही है। हिंसा और दहशत का माहौल देश में व्याप्त है।

इसी विकृत संस्कृति की देन है वरिष्ठ पत्रकार व एक्टिविस्ट गौरी लंकेश की आवाज दबाने के लिए उनकी हत्या। यह हत्या दरअसल लोकतंत्र की हत्या है क्योंकि गौरी कर्नाटक में सड़ी-गली व्यवस्था, फिरकापरस्ती, दबे-कुचले के हक में तथा जाति-धर्म व्यवस्था के खिलाफ एक मुखर आवाज थीं। वह धर्म, संप्रदाय, जाति व्यवस्था तथा सभी प्रकार की अंधास्था के खिलाफ थीं। गांधी से गौरी तक की हत्याओं की पिछली कड़ी में कई बुद्धिजीवियों-लेखकों यथा दाभोलकर, पनसारे और कलमुर्गी की हत्याएं जुड़ी हैं, ऐसे लोगों की जुबान बंद न कर पाने के कारण ही उनकी हत्या हुई। जिन लोगों ने गांधी की हत्या पर मिठाईयां बांटी थी वे अब गौरी की हत्या पर सोशल मीडिया एवं ट्यूटर पर जश्न मनाते दीखे। फूहड़ बातों से गौरी को अपमानित करने की भी कोशिश हुई। इतना ही नहीं इन्हीं लोगों ने गौरी की हत्या का राज भी खोलकर रख दिया। कर्नाटक के एक भाजपा विधायक डी. एन. जीवराज का बयान इस हत्या की स्वीकारोक्ति है—'लंकेश अगर आरएसएस के खिलाफ ना लिखती तो आज जिन्दा होती।' फिर—'गौरी जिस तरह लिखती रही वह बर्दाश्त के बाहर था।' यानी इनके विरुद्ध बोलकर गौरी ने बड़ा गुनाह किया? विरोध के स्वर को दबाने के लिए ये हिंसा का सहारा भी लेने के लिए संकल्पित हैं—यह हर देशवासियों को समझ लेना चाहिए।

निःसंदेह हिंसक विचारों को जब अहिंसक विचारों से चुनौतियां मिलती हैं और उनके पास उसका कोई वैचारिक माकूल जवाब नहीं होता तो विपरीत विचार वाली जुबानों को बंद करने के लिए हत्या ही एकमात्र जवाब है। ऐसी ही स्थिति में देश ने गांधी की शहादत देखा और अब गौरी की देख रहा है।

दूरदर्शी गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन और उसमें अहिंसा के प्रयोग के क्रम में देश में व्याप्त हिंसा की प्रवृत्ति और उसके विकास को अच्छी तरह ताड़ लिया था। उस समय जब कुछ लोगों द्वारा राजनीतिक हत्या जिसमें अंग्रेजों की हत्या भी शामिल थी—को देशभक्ति मानकर हत्यारों का महिमामंडन शुरू किया था तो गांधी ने स्पष्ट रूप से इसकी निन्दा की थी। गांधी की कही वे सब बातें क्या आज सत्य साबित नहीं हो रही?

गांधी ने कहा था—'मुझे कहना चाहिए कि जो ऐसी हत्याओं को भारत के लिए लाभप्रद मानते हैं वे नासमझ हैं। धोखाधड़ी के कार्यों से लोगों को लाभ नहीं होता। ऐसी हत्याओं से कदाचित अंग्रेज भारत से चले जायेंगे। लेकिन इसके बाद राज्य कौन करेगा? इसका उत्तर यही है कि हत्यारे ही राज करेंगे। हत्यारे चाहे गोरे हों या काले भारत में राज करेंगे तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। ऐसे राज में भारत वीरान और नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। मुझे डर है कि कुछ भारतीय ऐसी हत्याओं की सराहना करेंगे—मेरे विचार से महापाप करेंगे।'

शहीद दाभोलकर, पनसारे, कुलवर्गी और गौरी लंकेश के हत्यारों की खोज में लगी विभिन्न राज्य सरकारों को अभी तक कोई सफलता नहीं मिली है और उसके विरुद्ध कोई खास कार्रवाई भी नहीं हुई है। यदि ये हत्यारे मान लीजिए मिल भी जाते हैं और आज यदि गांधी होते तो वे इन हत्यारों को निर्दोष मान लेते क्योंकि उनका मानना था कि हत्या तो नशा में किया गया कार्य होता है और नशा केवल शराब या भांग का नहीं होता, किसी पागलपन भरे विचार का भी हो सकता है। इसलिए सजा तो हत्या करने के लिए उकसाने वालों को मिले, गांधी की यही मांग होती।

हिंसा चाहे वह किसी की ओर से हो उसके हम विरोधी हैं। हत्या से न तो गांधी के विचार मरे और न ही गौरी के विचार ही मरने वाले हैं।

गौरी लंकेश के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि तभी होगी जब हम उनके विचारों की आवाज बन जायें। हम संकल्प करें—'गौरी बोली हैं तो हम भी बोलेंगे। न हमारी जुबान बंद होगी, न ही हमारी कलम!' अहिंसावादी-गांधीजनों की कट्टरवादियों व हिंसावादियों से लड़ने की सर्वोत्तम तैयारी होगी यह संकल्पना—'हम अपनी स्वतंत्रता के लिए अपनी जान देने को तैयार हैं।'

–अशोक मोती

बोलती तस्वीरें

गौरी लंकेश की हत्या पर पत्रकारों का विरोध

प्रेस क्लब ऑफ इण्डिया, नयी दिल्ली : 07 सितंबर, 2017

वरिष्ठ पत्रकार मृणाल पाण्डे के साथ संपादक, सर्वोदय जगत अशोक मोती

चौथी दुनिया के संपादक संतोष भारतीय व अन्य, नयी दिल्ली

एन. डी. टीवी के रवीश कुमार, नयी दिल्ली

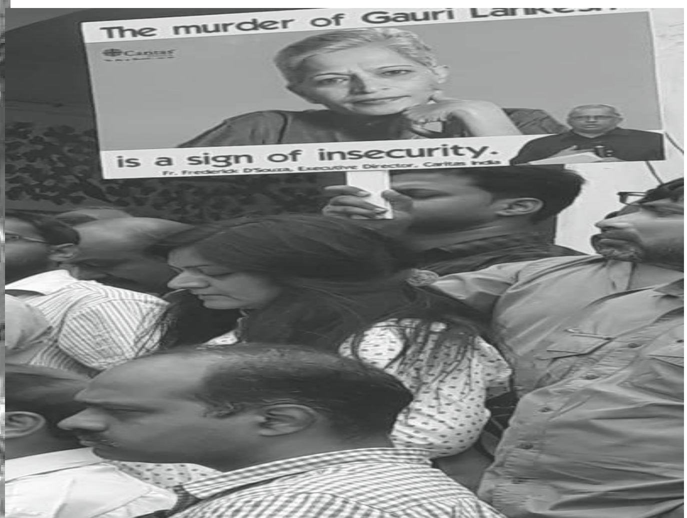

पत्रकारों का प्रदर्शन, नयी दिल्ली

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही व नीता महादेव, अहमदाबाद

गौरी लंकेश की हत्या के विरोध में प्रदर्शन करते पत्रकारगण, लखनऊ

कविता

शुभ लाभ देखकर मैं चुप हूं गौरी लंकेश

❑ रवि कुमार

एक एक कर मारे जा रहे हैं लोग
और मैं चुप हूं, इसलिए किसी भी
खतरे में नहीं मैं गौरी लंकेश?

मैं देख नहीं रहा उधर
लोग मारे जा रहे हैं जिधर
जिधर जहां आग लगी है
जिधर संताप का सुराज है
वह दिशा ओझल है मुझसे।

सुनो गौरी लंकेश!
मैं बोलूंगा तो, पद्मश्री नहीं मिलेगा मुझे
मैं बोलूंगा तो, पुरस्कार नहीं मिलेगा मुझे
मैं बोलूंगा तो
भारत-रत्न नहीं बन पाऊंगा।

देखो गौरी
कितना सुखी हूं और सुरक्षित हूं
मैं चुपचाप रहकर
कितना उज्ज्वल भविष्य है मेरा
हर दिशा से शुभ और
लाभ से घिरा हूं
और कितना बोलूंगा
हर दिन होगी हत्या
हत्यारे कितने कितने हैं
कितने रूप में अनूठे और सर्वव्यापी
कण-कण में उनका प्रभाव
उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम, मध्य भारत
सब में सर्वत्र समान, हैं वे विराजमान।

वे तो हत्यारे हैं
उनसे कितना मुकाबला करूंगा
कितनों को मारते रहेंगे
किन किन का शोक
मनाता रहूंगा गौरी!

और जब हत्यारों को
विरोध पसंद नहीं तो कुछ दिन
चुप रह जाना क्या बुरा है
उनके मन का दो एक नारा
लगा देने में क्या चला जाता है
मेरा या तुम्हारा गौरी?

तो अब मान लो कि
मेरे पास तक किसी गौरी लंकेश की
हत्यारी सूचना नहीं है
कौन था पनसारे, कौन था दामोलकर
कौन था कुलवर्गी
मैं किसी के शोक में नहीं।

गोरखपुर का नाम मैं नहीं जानता
मुजफ्फरनगर कहां है
जापान में या चीन में
या बांगला देश में
यह जानकर भी क्या कर लूंगा
गौरी लंकेश कौन थी?
क्या थी
यह जानकर क्या कर करूंगा?
कितनी औरतों को घर में जलाते हैं
कितने बच्चों को, कितने बूढ़ों को
किसानों को, कब से मारते आ रहे हैं
निर्विरोध अविरल अविराम
तब भी तो चुप रहता हूं मैं
हे राम!

आह सावन भादो के इन उत्फुल्ल दिनों में
यह शोक रुदन का राग लिये क्यों बैठूं
बादल फिर आये हैं
तड़ित का मोहक अनुनाद
झंकृत कर रहा है कातर हृदय को
तन्वंगी कामनाओं को
किल्लोल से बाहर क्यों देखूं?

देख रहा हूं
रातें बड़ी कोमल और पारदर्शी
हो रही है
आलोकित है विकट अंधकार
दिखता है हर दिशा तार तार
देख रहा हूं, शामें कितनी बहुरंगी
पर, सब पर एक रंग का कफन चढ़ा है
एक ही रंग का मुकुट मढ़ा है
और दिन दुपहरी नहीं झलकती राहें
अकाल बेला सा हो जाता है संसार
नहीं सुझाता किसी दिशा का आर पार।

ऐसा युग पहले कभी न आया था
जब हाहाकार को मंगलगान सा
समाज ने मिलकर गाया था
जब शोक को समय ने माथे चढ़ाया था
ऐसा युग कभी न आया था।

ओह प्रज्ज्वलित गौरी
मैं इस लुभावने हाहाकार की
आरती उतारूंगा
मैं हत्यारों को 'भारत'
और हत्या को 'यज्ञ' पुकारूंगा
मैं हर दिन हर पल महायुद्ध हारूंगा।

देखो मुझे पद्मश्री पाना है
मुझे भारत-रत्न होना है
मुझे हर हत्या और शोक से परे रहना है
मुझे केवल चुप रहना है।

चुप रहना अब मेरा राष्ट्रीय धर्म है गौरी
हत्या करना जैसे राष्ट्रीय कर्म है
मैं राष्ट्र धर्म निभाऊंगा
मैं चुप रहकर हत्यारों की
महिमा गुनगुनाऊंगा
तभी तो मनचाहा पाऊंगा

तुम्हें मरना था तुम मरी
मुझे जीना है
मान मर्यादा का अमित हलाहल पीना है
सुन लो गौरी लंकेश!

मैं अब किस हाल में
शुभ और लाभ से ध्यान न हटाऊंगा
मैं तो हत्या और हत्यारा गुण गाऊंगा!
मैं गौरी लंकेश की तरह
क्यों मारा जाऊं
मैं क्यों नहीं सब कुछ भूलकर
एक विराट नींद सो जाऊं?
क्यों नहीं मैं महामरण गान गाऊं?
क्यों नहीं मैं तम आरोहण कर जाऊं? ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।